सिद्धयोग

संस्थापक:
योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

एक प्रति : रु. 20
द्विवार्षिक : रु. 320

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सपौंई-283202 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 48, अंक :
सितम्बर 2015

अमृत कण

अनागतविधाता च प्रत्युपन्नमतिस्तथा।
द्वावेतौ सुखमेधेते यद्भविष्यो विनश्यति।।

— चाणक्य सूत्र

वह महान् है, जो संकट की पूर्वकल्पना से ही अपने बचाव के सभी उपाय कर लेता है और जिसे विपत्तियों या दुःख के आगमन पर आत्मरक्षा का उपाय सूझ जाता है, ऐसा व्यक्ति दोनों ही दृष्टि से अपने सुख की वृद्धि करता है। किन्तु जो व्यक्ति भाग्य के वश में होकर चलता है या यह मानता है कि जो भाग्य में लिखा है वही होगा, उसका विनाश अवश्यंभावी है।

यथातथोपदेशेन कृतार्थः सत्वबुद्धिमान्।
आजीवमपि जिज्ञासुः परस्तत्र विमुह्यति।।

— अष्टावक्र गीता

सत्व बुद्धि वाला व्यक्ति जैसे–जैसे यानि थोड़े से उपदेश से भी कृतार्थ हो जाता है, जबकि असत्व बुद्धि वाला व्यक्ति आजीवन जिज्ञासा करके भी उसमें मोह को ही प्राप्त होता है।

पुराणमित्येव न साधुसर्वं न चापि सर्वं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्याऽन्यतरद्भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः।।

— कालीदास

कोई वस्तु प्राचीन होने से ही श्रेष्ठ नहीं होती और न कोई वस्तु नवीन (आधुनिक) होने से ही श्रेष्ठ होती है। विवेकयुक्त व्यक्ति ज्ञान से परीक्षा करके ही दोनों में से श्रेष्ठ को स्वीकार करते हैं, जबकि मूढ़ व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के विश्वास के अनुसार चलता है।

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्।।

अग्नि से तपाये जाने पर जैसे धातु का मल जल जाता है, उसी प्रकार प्राणवायु के निग्रह से इन्द्रियों के सारे दोष दग्ध हो जाते हैं।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :– शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 48 | सितम्बर 2015 | अंक : 06

असतां दर्शनात् स्पर्शात् संजल्पाच्च सहासनात् ।
धर्माचाराः प्रहीयन्ते सिद्धयन्ति च न मानवाः ।।

([illegible] 1/29)

अर्थात् दुष्ट तथा दुर्व्यसनी मनुष्यों के दर्शन से, स्पर्श से, उनके साथ वार्तालाप करने से धार्मिक आचार नष्ट हो जाते हैं। ऐसे कुसंगी मनुष्य कभी भी अपने किसी कार्य में सफल नहीं हो सकते।।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख – *योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज*	3
2.	सम्पादकीय	10
3.	श्रीमद्‌भागवत में योग–परिचर्चा – *डॉ. विजय सिंह*	13
4.	योग में अरोग्यता – *डॉ. जे.पी.शर्मा*	16
5.	नर–देह में नारायण – *डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी*	22
6.	मैं जाना चाहूँ प्रभु नगरिया – *श्रीमती शारदा सिसौदिया*	25
7.	गुरु को पाये कोई कोई – *हेमराज चोपड़ा*	26
8.	योग–आसन	31
9.	श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में प्रबन्धन सूत्र – *डॉ. राजकुमारी त्रिखा*	33
10.	अद्‌भुत दर्शन व भय	38
11.	लोकगीत – *भूपेन्द्र*	40

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 170.00
द्विवार्षिक	: रु. 320.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु.1000.00

निःश्रेयस सिद्धि की साधना

योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सद्गुरुदेव के शक्तिपात के द्वारा सद्य: प्रतीति होना, श्रद्धा वीर्यस्मृति समाधि आदि के द्वारा योगध्यान का प्राप्त होना एवं ईश्वर प्रणिधान करने से अभिमत वस्तु, समाधि का प्राप्त होना आदि-आदि विषय विस्तार से खोल करके स्पष्टीकरण के साथ प्रकाशित करा दिये गये हैं। आशा है सभी साधकों ने उनको ध्यान पूर्वक पढ़ा होगा और समझा होगा कि ईश्वर-प्रणिधान के द्वारा आवर्जित किया ईश्वर साधकों को अपनी कृपा पूर्वक समाधि प्रदान करता है। यह भी एक प्रकार का अनादि कालीन महासिद्ध ईश्वर का शक्तिपात ही है। इस प्रकार के इन सभी विषयों का वर्णन कर देने के बाद श्री पतंजलि महाराज ने अपने 'योगदर्शन' में और भी कुछ अनुपम साधनों का वर्णन किया है जिनका अवलम्ब लेने वाले साधकों को अवश्य ही आत्मानुभूति का सीधा मार्ग मिलता है और वे साधक मन की एकाग्रता के कारण शीघ्रातिशीघ्र अपने लक्षीभूत परम श्रेय को प्राप्त कर लेते हैं। इनमें से सर्व प्रथम प्राणायाम है।

प्राणायाम की अमर साधना

भगवान पतंजलि देव लिखते हैं कि –

प्रच्छर्दन विधारणाभ्यां वा प्राणस्य।

अर्थात् प्राण को बाहर निकाल करके कुम्भक बढ़ाने से एवं आभ्यन्तर कुम्भक बढ़ाने से अनायास ही मन की एकाग्रता का अनुपम लाभ होता है। इस सूत्र पर श्री व्यासदेव जी निम्नांकित पंक्ति लिखते हैं –

कोष्ठयस्य वायोर्नासिका पुटाभ्यां प्रयत्न विशेषाद् वमनं प्रच्छर्दनम्, विधारणम् – प्राणायाम:, ताभ्यां वा मनस: स्थिति सम्पादयेत्।।

अर्थात् शरीर के भीतर की वायु को बाहर फेंकने को प्रच्छर्दन कहते हैं और भीतर को खींचने को विधारण कहते हैं। इन दोनों को करने से मन की एकाग्रता का लाभ होता है। श्री मनु जी महाराज अपनी मनुस्मृति में लिखते हैं –

दह्यन्ते हि ध्मायमानानां धातूनां यथा मला। तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते मला प्राणस्य निग्रहात्।।

अर्थात् जिस प्रकार से सोना, चाँदी आदि धातुओं के मल को अग्नि में तपा कर दूर कर दिया जाता है इसी प्रकार से इन्द्रियों के मल प्राणायाम से दूर हो जाते हैं।

प्राणायाम भी एक प्रकार का तप है। तप का लक्षण पिछले लेखों में बता दिया गया है

'द्वन्द सहनं तपः' सर्दी गर्मी भूख प्यास के जोड़े को सहना तप कहलाता है। प्राणायाम करने में भी स्वाभाविक द्वन्द सहन होता है क्योंकि प्राण की साधारण गति चलते रहने से सुख मिलता है और प्राण की गति को रोक दिया जाय तो मन उसमें कष्ट का अनुभव करता है, इसी का नाम द्वन्द सहन है। सर्दी–गर्मी आदि में भी सर्दी को सहन एवं गर्मी को सहन करना, इसी का नाम द्वन्द–सहन है। भगवान पतंजलि देव तप का फल बतलाते हुए योग दर्शन में लिखते हैं –

कायेन्द्रिय सिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः ।।

इस सूत्र पर व्यास जी का भाष्य –

निर्वर्त्यमानमेव तपो हिनस्त्यशुद्धयावरणमलं तदावरण मलापगमात् काय सिद्धिः अणिमाद्या, तथेन्द्रिय सिद्धि= दूराछ्च्वणदर्शनाद्येति।

अर्थात् बराबर किया हुआ तप अशुद्धि के आवरण को खत्म कर देता है। उस आवरण के समाप्त हो जाने से अणिमादिक कायसिद्धि और इसी प्रकार ऐन्द्रिय सिद्धि दूर दर्शन, दूर श्रवण आदि सिद्धि उपलब्ध होती है। यह तप का ही महान प्रभाव है और योग में प्राणायाम से बढ़कर किसी दूसरे तप को नहीं माना है। जहाँ–जहाँ मनुष्य तप के प्रभाव से अपनी इन्द्रियों पर कन्ट्रोल करता है उसी प्रकार प्राणायाम से प्राण और मन पर कन्ट्रोल करता है। प्राण और मन का बिल्कुल अभिन्न सम्बन्ध है।

यत्र प्राणोलीयते तत्र मनो लीयते।

अर्थात् जहाँ पर प्राण लय हो जाता है वहाँ मन लय हो जाता है और इसी प्रकार राजयोग की साधना द्वारा –

यत्र मनो लीयते तत्र प्राणो लीयते।

अर्थात् जहाँ मन लय होता है वहाँ प्राण भी लय हो जाता है। प्राण और मन का बिल्कुल अभिन्न सम्बन्ध है। जिसने प्राण पर कण्ट्रोल कर लिया समझ लेना चाहिए कि उसने मन पर भी कण्ट्रोल कर लिया इन दोनों में किसी एक की साधना करने से दूसरे की साधना स्वाभाविक ही हो जाती है। इसलिए जो मन के ऊपर नियन्त्रण करना चाहते हैं उनके लिए प्राणायाम करना एक अमूल्य एवं अनुपम साधन है। इस उत्तम साधन को करने वाला व्यक्ति शनैः शनैः अवश्य ही निश्रेयस सिद्धि को पा लेता है। प्राणायाम हठ की साधना है। इसलिए साधक को चाहिए कि वह प्राणायाम के अनुकूल शुद्ध वातावरण में ही इस साधना को करें। प्राणायाम की साधना के लिए हठयोग के परम उपदेशक हठयोग प्रदीपिका के रचयिता योगी आत्माराम ने हठाभ्यासी योगी के लिए एक सुन्दर मठ निर्माण का आदेश दिया है। वह मठ ही प्राणायाम के अभ्यासी के लिए उपयुक्त साधना–स्थली हो सकता है।

श्री आत्माराम जी ने मठ निर्माण का उपदेश इस प्रकार किया है :–

अल्प द्वारमरन्ध्रगर्तविवरं नात्युच्चनीचायतम्।

सम्यग्गोमय सान्द लिप्त, ममलं नि:शेष जन्तूज्झिम्।।

वाह्ये मण्डप वेदि कूप, रुचिरं प्राकार संवेष्टितम्।

प्रोक्तं योगमठस्य लक्षणमिदं सिद्धैर्हठाभ्यासिभि:।।

अर्थात् योगाभ्यासी के लिए एक ऐसे सुन्दर मठ की आवश्यकता है, जिसका छोटा दरवाजा हो (और वह उत्तराभिमुख होना चाहिए) जिसकी जमीन समतल हो। किसी प्रकार के बिल वगैरह न हों ऊँचे–नीचे गड्ढे न बने हों बहुत ऊँचा न हो और बहुत नीचा भी न हो गोबर से सुन्दर अच्छी प्रकार लेपन किया हो, जिसमें किसी प्रकार के मच्छर तथा जीव जन्तु न हों। उसके सामने सुन्दर मण्डप वेदि आदि बनी हुई हों। एक ओर सुन्दर मीठे जल का कुँआ हो और जिसकी चहार दीवारी बनी हुई हो। इस प्रकार का सुन्दर मठ हठाभ्यासियों के लिए उपयुक्त साधना स्थल रहता है। हठाभ्यासी को चाहिए प्राणायाम का अभ्यास करने से पहले प्राणायाम से सम्बन्ध रखने वाले तीन बन्धों के अभ्यास पहले से कर ले, ताकि अभ्यास काल में इनका उपयोग किया जा सके। उन बन्धों का वर्णन 'हठयोग प्रदीपिका' में इस प्रकार किया है –

मूलबन्ध

पार्ष्णिभागेन संपीडय, योनिमाकुंचयेद्गुदम्।

अपानमूर्ध्वमाकृष्य, मूत्रबन्धोऽभिधीयते।।

अर्थात् दोनों पैरों की एड़ी अर्थात् टाकने से सीमनी को दबाये और उस भाग का आकुंचन करे, अपान वायु का ऊर्ध्वाकर्षण करे, इसी का नाम मूल बन्ध है। मूलबन लगा करके यदि उड्डियान बन्ध लगाया जाय तो अपान वायु का ऊर्ध्वाकर्षण अवश्य–अवश्य हो जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में अपने मुखारविन्द से इन्हीं भावों को स्पष्ट रूप से कहा है।

अपाने जुह्वति प्राणं, प्राणेऽपानं तथा परे।

प्राणापान गती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणा:।।

अर्थात् अपान के अन्दर प्राण का हवन और प्राण के अन्दर अपान का, इस प्रकार से प्राणापान गतिरोधन करने से योगियों को प्राणायाम सिद्ध होता है। जिस समय योगी पवनाभ्यास का हठी मूलबन्ध लगा करके उड्डियान से प्राण का ऊर्ध्वाकर्षण करता है तो वह अपान हृदय देश में रहने वाले प्राण तक आकर्षित हो जाता है और उसी प्रकार ऊपर से जलन्धर बन्ध लगा देने से प्राण की गति अपान की ओर बढ़ जाती है, इस प्रकार प्राणापान की एकता से योगी लोग प्राणायाम परायण रहते हैं।

उड्डियान की विधि

विधि बतलाने से पहले योगाचार्य आत्माराम योगी उड्डियान शब्द का अर्थ बतलाते हुए कहते हैं –

बद्धो येन सुषुम्नायाम् प्राणस्तूड्डीयते यत:।
तस्मादुड्डीयनाख्योऽयं योगिभि: समुदाहृतम्।।
उड्डीनं कुरुते यस्मादविश्रांतं महाखग:।
उड्डीयानं तदेव स्यात्तत्र बंधोऽभिधीयते।।

अर्थात् जिसके कारण से सुषुम्णा के अन्दर प्राण उत्थान करता है इसलिए इस बंध का नाम उड्डियान कहा गया है। जिस प्रकार से एक बड़ा भारी पक्षी आकाश में उड़ा करता है इसी प्रकार से प्राण देह रूपी आकाश में इस बंध के द्वारा गति करता है इसलिए इस बंध का नाम उड्डियान बंध है।

उड्डियान बंध की विधि

उदरे पश्चिमं तानं, नाभेरुर्ध्वंच कारयेत्।
उड्डीयानो ह्यसो बंधो मृत्युमातंगकेसरी।।

अर्थात् पेट में नाभि से ऊपर के हिस्से में पश्चिम उत्तान करें अर्थात् (नाभि मण्डल को प्राण के ऊर्ध्वाकर्षण के द्वारा तनाव दें) इसी का नाम उड्डियान बन्ध है। जिस प्रकार से हाथी के ऊपर बबर शेर हमला कर देता है और उसको गिरा देता है इसी प्रकार यह बंध मृत्यु पर जय प्राप्त कराने के लिए अनुपम है।

उड्डीयान तु सहजं गुरुणा कथितं सदा।
अभ्यसेत्सततं यस्तु, वृद्धोऽपि तरुणायते।।
नाभेरुर्ध्वमधश्चापि, तानं कुर्यात्प्रयत्नत:।
षण्मासमभ्यसेन्मृत्युं जयत्येव न संशय:।।
सर्वेषामेव बन्धानामुत्तमो ह्युड्डियानक:।
उड्डियाने दृढ़े बन्धे, मुक्ति: स्वभाविकी भवेत्।।

श्री गुरुदेव ने इस उड्डियान बंध को साधारण रूप से बतला दिया किन्तु फल इसका महान है। जो साधक इसका दृढ़तर अभ्यास करता है वह चाहे वृद्ध भी है तो भी अवश्य ही तरुणता को पा जाता है। जो साधक नाभि के ऊर्ध्व और अधोभाग को पश्चिम की ओर उत्तान करता है (पीठ की ओर) तनाव देता है वह छ: महीने के अभ्यास से बिना किसी संशय के अवश्य ही मृत्यु को जीत लेता है। यह उड्डियान बन्ध सभी बन्धों में उत्तम है। इस बन्ध का अभ्यास हो जाने के बाद साधक अवश्य ही मुक्ति पा जाता है। उड्डियान बन्ध कर लेने के बाद साधक को अवश्य ही जालन्धर बन्ध का अभ्यास करना चाहिए, उसकी विधि इस प्रकार है --

जालन्धर बन्ध की विधि

कंठमाकुंच्य हृदये, स्थापयेच्चिबुकं दृढ़ं।
बन्धो जालन्धराख्योऽयं जरामृत्युविनाशक:।।

बध्नाति हि शिराजाल–मधोगामि नभो जलम्।
तत्तो जालंधरो बन्धः कंठ दुःखौघनाशनः।
जालंधरे कृते बंधे, कंठ संकोच लक्षणे।
न पीयूष पतत्यग्नौ, न च वायुः प्रकुप्यति।।
कंठ संकोचनेनैव, द्वेनाड्यो स्तम्भयेद्दृढम्।
मध्य चक्रमिदं ज्ञेयं, षोडशाधार बंधनम्।।

अर्थात् कंठ का आकुंचन करके ठोड़ी को दृढ़ता से छाती में लगा दे इसी का नाम जालन्धर बन्ध है। यह बन्ध बुढ़ापे और मौत का नाश करने वाला है। क्योंकि यह बन्ध अधोगामि शिरा नाड़ियों के जाल को बाँधता है। इसलिए इसका नाम जालन्धर बन्ध है। कंठ का आकुंचन करने वाले जालंधर को कर लेने के बाद चन्द्र–मण्डल से स्रवित होने वाला अमृत अग्नि में नहीं गिरता, और न ही वायु का प्रकोप होता, यह बंध इड़ा पिंगला का स्तम्भन करके कंठ में स्थित षोड़शाधार विशुद्ध चक्र के बन्धन का कारण है। साधक को चाहिए कि मूलबन्ध के द्वारा गुदाद्वार का आकुंचन करके उड्डियान बन्ध लगाये और उड्डियान लगाने के बाद कंठसंकोचन लक्षण रूप जालंधर बंध को लगावे। जो साधक इन तीन बन्धों को लगा करके प्राणायाम का अभ्यास करता है वह अवश्य ही मृत्यु को जीत लेता है। साधक को चाहिए कि प्राणायाम से पहले इन तीनों बन्धों का अभ्यास बना ले। क्योंकि प्राणों पर कन्ट्रोल करने के लिए यह तीनों बन्ध परम श्रेयस्कर हैं। वस्तुतः प्राणपक्षी को यथार्थता से बाँधने में यह तीनों बन्ध ही सामर्थ्य वाले हैं। कुम्भक प्राणायाम से पहले साधक को चाहिए कि प्राण की गति को अधिक से अधिक लम्बी करना सीखे जिससे प्राणायाम काल में मनुष्य अपनी उस अमर साधना में पूर्णरूपेण सफल हो सके। योगी पवनाभ्यास से पहले ही निम्नांकित विधि से प्राण पर नियन्त्रण करना आरम्भ कर देते हैं। उसका रूप इस प्रकार है पवनाभ्यासी साधक समकाय शिरोग्रीव होकर सिद्धासन, स्वस्तीकासन अथवा पद्मासन से बैठ जाय। उसके बाद अपने दाहिने हाथ के अंगूठे से दक्षिण नासिका के छिद्र को हलका सा दबा करके बायीं नासिका से ॐ ॐ का उच्चारण करते हुए शनैः शनैः श्वास को खींचे। श्वास को इतनी धीमी गति से खींचे जिससे वह ॐ शब्द कम से कम 16 मात्राओं से अन्दर जा सके. जब बाह्य वायु पूर्ण रूपेण अन्दर चला जाये तो पहले उसे रोकने का प्रयत्न न करे प्रत्युत कोष्ठगत वायु को दक्षिण नासापुट से उसी प्रकार से प्रणव की 16 मात्रा गिनते हुए शनैः शनैः निकाल दे, प्राण बाहर निकाल देने के बाद प्राण में थोड़ी सी घबराहट आयेगी जिससे प्राण पुनः जल्दी से अन्दर जाने की चेष्टा करेगा। किन्तु उस प्राण को यकायक अन्दर नहीं जाना चाहिए। प्रत्युत 16 की अपेक्षा दक्षिण नासापुट से प्रणव की 15 मात्रा गिनते हुए अन्दर ले जाय और पुनः फिर उसी प्रकार बायें नासारन्ध्र से ॐ की 15 मात्रा गिनते हुए निकाल दे। उसके बाद उसी नासिका से 14 मात्रा से ले जाय और दक्षिण नासिका से 11 मात्रा से ही प्राण बाहर निकाल दे, इसी प्रकार करते हुए प्राण की एक–एक मात्रा

घटाते हुए प्राण को समगति पर ले आए। यह भी एक प्रकार का प्राणायाम ही है। एवं नाड़ी शोधन का ही एक प्रकार है। ऐसा करने से साधक प्राण की गति पर नियन्त्रण कर लेता है। हमारे आचार्यों ने पवनाभ्यासी को सबसे पहले नाड़ीशोधन प्राणायाम करने का आदेश दिया है। उपरोक्त प्राणायाम भी नाड़ी–शोधन का ही एक प्रकार समझना चाहिए। यह साधन हठावलम्बी साधकों का प्रारम्भिक साधन है। एवं पवनाभ्यासी सन्तों का अनुभूत है। इसका अभ्यास करने वाला साधक आगे की कठिन साधनाओं में कभी भी अभिभूत नहीं होता है। अतः कुम्भक प्राणायाम करने से पहले साधक को चाहिए कि इस रेचक पूरक को अभ्यास की दृढ़ता से बढ़ाता रहे और कम से कम 6 मास तक इसका अभ्यास करे। उसके बाद वह साधक प्राण जप का अधिकारी बन जाता है। एक बात का और अवश्य विचार रखना चाहिए, कि इस अमर साधना का अभ्यास अधिकारी को ही करना चाहिए जो जिस विद्या का अधिकारी है वही उसको पा भी सकता है। अनधिकारी प्रवेश होने का प्रयत्न करता है तो वह स्खलित हो जाया करता है और बाद में इस प्रकार का साधक अपनी कमी न बतलाकर इस अमर विद्या के अन्दर दोष–दर्शन करता है और अन्य उत्साही साधकों को भी श्रेय मार्ग से च्युत करने का प्रयत्न करता है।

प्राणायाम का अधिकारी कौन ?

भगवान श्री महादेव जी ने योगाधिकारी साधक के लक्षण इस प्रकार लिखे हैं–

महावीर्यान्वितोत्साही मनोज्ञः शौर्यवानपि।
शास्त्रज्ञोऽभ्यास शीलश्च निर्मोहश्च निराकुलः।।
नव यौवन सम्पन्नो मिताहारी जितेन्द्रियः।
निर्भयस्च शुचिर्दक्षो दाता सर्व जनाश्रयः।।
अधिकारी स्थिरो धीमान् यथेच्छावस्थितः क्षमी।
सुशीलो धर्मचारी च गुप्तचेष्टः प्रियंवदः।।
शास्त्र विश्वाससम्पन्नो देवता गुरु पूजकः।
जन संग विरक्तश्च महव्याधि विवर्जितः।।
अधिमात्रतरोज्ञेयः सर्वयोगस्य साधकः।।

अर्थात महावीर्यवान्, परम उत्साही, बुद्धि कौशल से मन के भावों को तत्काल समझने वाला, शूरवीर, शास्त्रों का ज्ञाता, अभ्यास शील, मोह और व्याकुलता से रहित, नवयौवन संपन्न, मिताहारी, जितेन्द्रिय, निर्भय, पवित्र, सभी कार्यों के करने में चतुर, दाता, सबको सहारा देने वाला, सब प्रकार से अधिकारी दृढ़, बुद्धिमान्, स्वायत्त चेष्टा सहन शील, सुशील, धर्मचारी, मृदुभाषी, मन के रहस्य को गुप्त रखने वाला, शास्त्र विश्वास सम्पन्न देवता एवं गुरुदेव का पूजक, जन संग रहित किसी प्रकार की व्याधि से ग्रसित न हो इस प्रकार का साधक उत्तम योगाधिकारी है। ऐसे साधक को पूर्ण आस्था एवं विश्वास पूर्वक अभ्यास करने से बहुत

जल्दी सिद्धिप्राप्त होती है और इसके अतिरिक्त जो लोग श्रद्धाहीन हैं वह अपने लक्ष्य को पूर्ण रूपेण प्राप्त नहीं कर सकते।

न भवेत् संगयुक्तानां, तथा विश्वासिनामपि।

गुरु पूजा विहीनानां तथा च बहुसंगिनाम्।।

मिथ्यावादरतानां च, तथा निष्ठुरभाषिणाम्।

गुरु संतोष हीनानां न सिद्धि: स्यात् कदाचन्।।

जो लोग कुसंगी हैं अविश्वासी हैं और गुरुदेव की पूजा से विहीन हैं जन–संग में पड़े रहते हैं, झूठ बोलते हैं और कठोर बोलते हैं गुरुदेव को संतुष्ट नहीं कर सकते ऐसे लोग कभी भी सिद्धि – भाजन नहीं हो पाते। इसके अतिरिक्त –

फलिस्यतीति विश्वास: सिद्धे: प्रथम लक्षणम्।

द्वितीयं श्रद्धयायुक्त, तृतीयं गुरुपूजनम्।।

चतुर्थ समताभावं, पञ्चमेन्द्रिय निग्रहम्।

षष्ठं च प्रमिताहार, सप्तम नैव विद्यते।।

जो लोग विश्वास करने वाले हैं, श्रद्धा युक्त हैं, गुरुपदपूजक हैं, समत्व बुद्धि युक्त हैं, इन्द्रिय निग्रह युक्त ब्रह्मचारी हैं, और मिताहारी हैं ऐसे लोग थोड़े समय में ही सिद्धि को पा जाया करते हैं। साधक को चाहिये यत्न पूर्वक अपने अभ्यास को बढ़ाता रहे और उपरोक्त अभ्यास को दृढ़ता पूर्वक करता रहे। ऐसा करने से वह साधक हठ विद्या का उत्तम अधिकारी हो जायेगा। मनुष्य को कभी किसी साधना का स्वयं अवलम्ब नहीं लेना चाहिए। अनुभवी गुरु के द्वारा हठ विद्या को प्राप्त करना चाहिए। हमारा यह प्राचीन भारतीय विज्ञान है –

भवेद्वीर्यवती विद्या गुरुवक्त्र समुद्भवा।

अन्यथा फलहीना स्यान्निर्वीर्याप्यतिदु:खदा।।

अर्थात् गुरु मुख से प्राप्त हुई विद्या वीर्यवती होती है और पूर्ण फल की दात्री होती है जो विद्या इधर–उधर के प्रयास से या न जानने वाले अनधिकारियों से एवं कर्ण परम्परा से प्राप्त की जाती है, वह विद्या निर्वीर्य रहती है और कई प्रकार के कष्ट पैदा करती है। अत: श्री गुरुदेव के कृपा–प्रसाद और प्रसन्नता से ही विद्या प्राप्त करना चाहिए। विद्या की सफलता में गुरुदेव का आशीर्वाद ही अटल साधन है –

गुरु सन्तोष्य यत्नेन ये वै विद्यामुपासते।

अविलम्बेन विद्यायास्तस्या फल मवाप्नुयु:।।

अर्थात् जो लोग गुरुदेव को सन्तुष्ट करके विद्या प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं, वे लोग अविलम्ब ही उस विद्या को पा जाते हैं एवं सब कार्यों में सफल रहते हैं।

श्री महाल्मीकीय रामायण एवं योग

– योगाचार्य डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी

जब राजा दशरथ श्री राम से रुकने के लिये कहने लगे तो श्री राम बोले – निष्पाप नरेश ! आज आप को मिथ्यावादी बनाकर मैं अक्षय राज्य, सब प्रकार के भोग, वसुधा का आधिपत्य, मिथिलेश कुमारी सीता तथा अन्य किसी अभिलषित पदार्थ को भी स्वीकार नहीं कर सकता। मेरी एकमात्र इच्छा यही है आप की प्रतिज्ञा सत्य हो। श्री राम के ऐसा कहने पर संकट में पड़े हुये राजा दशरथ ने दुःख और संताप से पीड़ित हो उन्हें छाती से लगा लिया और फिर अचेत हो गये और पृथ्वी पर गिर गये। उस समय उनका शरीर जड़ की भाँति चेष्टाहीन हो गया। वहाँ एकत्र. हुई सभी रानियाँ रो पड़ी। सुमन्त भी रोते – रोते मूर्च्छित हो गये। वहाँ सब ओर हाहाकार मच गया। निम्न श्लोक पढ़िये –

" देव्यः समस्ता रुरुदुः समेता
स्तां वर्जयित्वा नरदेव पत्नीम्
रुदन् सुमन्त्रोऽपि जगाम मर्च्छां "
हाहाकृतं तत्र बभूव सर्वम् ।।

तदनन्तर होश में आने पर सुमन्त उठ खड़े हुये उनके मन में बड़ा संताप हुआ। वे क्रोध के मारे काँप रहे थे और अपने दोनों हाथों से सिर को पीटने लगे। बारम्बार लम्बी साँस खींच कर हाथ से हाथ मल कर दाँत कटकटाकर राजा दशरथ के मन की वास्तविक अवस्था को देखकर अपने वचनों के तीखे वाणों से कैकयी के हृदय को कम्पित सा करने लगे– कैकयी के मर्म स्थानों को विदीर्ण करते हुये सुमन्त कहने लगे – देवि ! तुमने सम्पूर्ण चराचर के स्वामी अपने पति राजा दशरथ का ही परित्याग कर दिया तब इस जगत में ऐसा कोई कुकर्म नहीं है जिसे न कर सको। मैं तो यही समझता हूँ कि तुम पति की हत्या करने वाली ही तो हो, अन्ततः कुल घातिनी भी हो। राजा दशरथ तुम्हारे पति, पालक और वरदाता हैं तुम उनका अपमान न करो। नारियों के लिये पति की इच्छा का महत्व करोड़ों पुत्रों से भी अधिक है। तुम्हारा पुत्र भरत राजा हो जाये और इस पृथ्वी पर शासन करे किन्तु हम लोग तो वहीं चले जायेंगे जहाँ श्री राम जायेंगे। तुम्हारे राज्य में कोई भी ब्राह्मण निवास नहीं करेगा। यदि तुम आज मर्यादाहीन कर्म करोगी तो निश्चय ही हम श्री राम का अनुसरण करेंगे। मुझे तो यह देखकर आश्चर्य सा हो रहा है कि तुम्हारे इतने बड़े अत्याचार करने पर भी पृथ्वी तुरन्त फट क्यों नहीं जाती ?

आश्चर्यमिव पश्यामि यस्यास्ते वृत्तमी दृशम्
आचरन्त्या न विवृता सद्यो भवति मेदिनी।

महा ब्रह्मर्षि सृष्टा वा ज्वलन्तो भीम दर्शना: ।

धिग्वाग्दण्डा न हिंसन्ति राम प्रव्राजने स्थिताम् ।

बड़े–बड़े ब्रह्मर्षियों के धिक्कार पूर्वक वाग्दण्ड (शाप) जो देखने में भयंकर और जलाकर भस्म कर देने वाले होते हैं, श्री राम को घर से निकालने के लिये तैय्यार खड़ी हुई तुम जैसी पाषाण ह्रदया का सर्वनाश क्यों नहीं कर डालते हैं ? तुम्हारी माता का जैसा स्वभाव था, तुम्हारा भी वैसा ही स्वभाव है। लोक में यह कहावत है कि नीम से मधु नहीं टपकता ' न हि निम्वात् स्रवेत क्षौद्रं लोके निगदितं वच: ' लोक में यह उक्ति सोलह आने सच मालूम होती है कि पुत्र पिता के समान तथा कन्यायें माता के समान स्वभाव वाली होती हैं। तुम पाप पूर्ण विचार रखने वाले लोगों के बहकावे में आकर देवराज इन्द्र के समान तेजस्वी अपने प्रतिपालक स्वामी को अनुचित मार्ग में न लगाओ। श्री राम अपने भाइयों में ज्येष्ठ, उदार, कर्मठ, स्वधर्म के पालक, जीव जगत के रक्षक और बलवान हैं उनका इस राज्य पर अभिषेक होने दो। देवि ! यदि श्री राम अपने पिता दशरथ को छोड़कर वन को चले जायेंगे तो संसार में तुम्हारी बड़ी निन्दा होगी। राजभवन में सुमन्त के इस प्रकार तीखे तथा सान्त्वना पूर्ण वचनों से कैकयी के मन में न क्षोभ हुआ और न ही दु:ख। तब इक्ष्वाकु कुल नन्दन राजा दशरथ अपनी प्रतिज्ञा से पीड़ित हो आँसू बहाते हुये लम्बी साँस खींचकर सुमन्त से फिर इस प्रकार बोले–सूत ! तुम शीघ्र ही रत्नों से भरी पूरी चतुरांगिणी सेना को श्री राम के पीछे – पीछे जाने की आज्ञा दो ! मुख्य–मुख्य आयुध, नगर के निवासी, छकड़े तथा वन के भीतरी रहस्य को जानने वाले व्याध ककुत्स्थ कुल भूषण श्री राम के पीछे–पीछे जायें। श्री राम निर्जन वन में निवास करने जा रहे हैं अत: मेरा खजाना और अन्य भंडार ये दोनों वस्तुयें उनके साथ जायें।

धान्य कोशश्च म: कश्चिद् धन कोशश्च मामक:

तौ राममुगच्छेतां वसन्तं निर्जन वने।

ये वन के पावन प्रदेशों में यज्ञ करेंगे, उनमें आचार्य आदि को पर्याप्त दक्षिणा देंगे तथा ऋषियों से मिलकर वन में सुखपूर्वक रहेंगे। महाबाहु भरत अयोध्या का पालन करेंगे। श्री मान राम को सम्पूर्ण मनोवांछित भोगों से सम्पन्न करके यहाँ से भेजा जाये। जब महाराज ऐसी बातें कहने लगे तो कैकयी को बड़ा भय हुआ, उसका मुँह सूख गया और स्वर भी रुँध गया। वे विषाद ग्रस्त एवं त्रस्त होकर सूखे मुहँ से राजा से बोली – श्रेष्ठ महाराज ! जिसका सार भाग पहले ही पी लिया गया है उस स्वाद रहित सुरा को सेवन करने वाला ग्रहण नहीं करता उसी तरह धनहीन और सूखे राज्य को भरत कभी ग्रहण नहीं करेंगे। राजा तुमने राम के साथ सेना और प्रबन्ध का जो प्रतिबन्ध लगाया है वह तुमने पहले क्यों नहीं कहा था। राजा का क्रोध युक्त वचन सुनकर कैकयी दुगुना क्रोध करती हुई बोली–महाराज ! आप के वंश में ही राजा सगर हुये हैं उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र असमञ्ज को घर से बाहर कर दिया था और राज्य का दरवाजा सदा के लिये बन्द कर दिया था। इसी प्रकार से इनको भी यहाँ से चले जाना चाहिये। उसके ऐसा कहने पर

राजा दशरथ ने कहा– धिक्कार है ! यहाँ जितने लोग थे सभी लाज से गड़ गये। कैकयी उस धिक्कार के अभिप्राय को समझ न सकी। उस समय राजा के प्रधान तथा वयोवृद्ध मन्त्री सिद्धार्थ भी बैठे थे। वे राजा के आदरणीय तथा बड़े ही शुद्ध स्वभाव के थे। उन्होंने कैकयी से इस प्रकार कहा – देवि! असमञ्ज बड़ा दुष्ट बुद्धि का था। वह मार्ग में खेलते हुये बच्चों को पकड़कर सरयू के जल में फेंक देता था और ऐसे कार्यों से अपना मनोरंजन करता था। नगर वासियों की शिकायत पर राजा ने असमञ्ज को अपने राज्य से बाहर कर दिया और वह वन को चले गये। वह पापा चारी था। किन्तु श्री राम ने ऐसा कौन सा अपराध किया है जिसके कारण इन्हें इस तरह राज्य पाने से रोका जा रहा है। हम लोग तो श्री रामचन्द्र में ऐसा कोई अवगुण या दोष नहीं देखते हैं। वह शुक्ल पक्ष के द्वितीया के चन्द्रमा के समान निर्मल हैं। उनमें कोई पाप या अपराध ढूँढ़ने से भी नहीं मिल सकता है। देवि ! यदि तुम्हें श्री राम में कोई दोष दिखाई देता है तो उसे बताओ। जिनमें कोई दुष्टता नहीं है जो सदा सन्मार्ग में स्थित हैं ऐसे पुरुष का त्याग धर्म के विरुद्ध माना जाता है। ऐसे धर्म विरोधी कर्म जो इन्द्र के तेज को भी दग्ध कर देगा।

अदुष्टस्य ही संत्याग: सत्पथे निरतस्यच
निर्दहृदेपि भुक्रस्य धुति धर्म विरोवान

अत: हे देवि ! श्री राम चन्द्र जी के राज्याभिषेक में विघ्न डालने से कोई लाभ नहीं होगा तुम्हें लोक निन्दा से भी बचना चाहिये। सिद्धार्थ की बात सुनकर राजा दशरथ अत्यन्त थके वाणी से कैकयी से बोले– पापिनी ! क्या तुम्हें यह बात नहीं रुची ? तुम्हें अपने या मेरे हित का कोई ज्ञान नहीं है। तू दुखद मार्ग का आश्रय लेकर कुचेष्टा कर रही है जो सत्पुरुषों के मार्ग के विपरीत है। अब मैं भी यह राज्य, धन और सुख को छोड़कर श्री राम के पीछे चला जाऊँगा। ये सब लोग भी उन्हीं के साथ जायेंगे। तू अकेली भरत के साथ चिरकाल तक राज्य का सुख भोगना। पढ़िये निम्न श्लोक को –

अनुव्रजिष्याम्यहमद्य रामं
राज्यं परित्यज्य सुखं धनं च
सर्वे च राज्ञा भरतेन च त्वं
यथा सुखं भुङ्क्ष्व चिराय राज्यम् ॥

(क्रमश:)

श्रीमद् भागवत में योग परिचर्चा

– डॉ. विजय सिंह

पिछले लेख में अजामिल की कथा वर्णित किया गया। इस कथा का मर्मांश जटिल है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में " गहना कर्मणो गतिः " अर्थात् कर्म की गति समझना अत्यन्त कठिन है। अजामिल मृत्यु काल में भयभीत अपने छोटे बेटे " नारायण " को सहायतार्थ पुकार उठा। अद्भुत चार नारायण पार्षद आते हैं और यम दूतों को फटकारते हुये, नाम – महिमा का प्रभाव वर्णन करके उन्हें यमलोक लौटने को विवश कर देते हैं। अन्त में अजामिल मोह माया का परित्याग कर हरिद्वार में तप, भक्तियोग का सहारा लेकर सायुज्य मोक्ष प्राप्त करता है।

" **तदर्थ जपः तद्भावनम्** " इस योग सूत्र, का मतलब है अर्थ की भावना से युक्त जप सार्थक फल दाता होगा। टेप रेकार्ड में " नारायण " " नारायण " के ध्वनि सम्पादन से जड़ टेप का उद्धार होने वाला नहीं है। मन में वैखर शब्द का अर्थ उद्भाषित होने पर ही, मन एकाग्र होकर शक्ति का आधिष्ठान बनता है। फिर मृत्यु–काल में भयानक यमदूतों के दर्शन एवं प्राणाकर्षण से भयभीत अजामिल अपने छोटे बेटे नारायण को अर्थभाव में लेकर पुकारा था, अतः नारायण पार्षदों का आगमन के पीछे छिपा रहस्य उजागर नहीं हो पाता। संसय का समाधान आप्त पुरुषों के उद्बोधन से ही होगा।

श्री सदगुरु भगवान ने प्रवचन में बताया था कि अजामिल के ग्राम में एक बार कुछ महात्मा पधारे और लोगों ने अजामिल के घर से भिक्षा प्राप्त करने का सुझाव उनको दिया। अजामिल अपने पूर्व नैतिक चरित्र से स्खलित हुआ वैश्या भार्या के साथ रह रहा था। महात्माओं ने अपने दिव्य दृष्टि से अजामिल के पूर्व एवं वर्तमान चरित्र को देखकर, उसके कल्याणार्थ, उसे होने वाले अपने पुत्र का नाम नारायण रखने की आज्ञा दिया। आठवाँ पुत्र महात्माओं के कृपा–शक्ति के कारण अत्यन्त मोहक, विनम्र भाव वाला तथा अजामिल को उससे अत्यन्त सुख प्राप्त होता था। अजामिल अपने इस बालक में आसक्त रहा करता था। अतः उसे कारण–अकारण नारायण–नारायण कहकर पुकारता रहता था।

अजामिल का पूर्व चरित्र, कितना उन्नत व तप पूर्ण था। अजामिल बड़ा शास्त्रज्ञ था। शील, सदाचार और सद्गुणों का खजाना था। ब्रह्मचारी, विनयी, जितेन्द्रिय, सत्य निष्ठ, मन्त्रवेत्ता और पवित्र भी था।

अयं हिश्रुतसम्पन्नः शील वृत्तगुणालयः।

धृतव्रतो मृदुर्दान्तः सत्यवान्मन्त्र विच्छुतिः ।।56।। अ.1, स्क.6

अजामिल, पिता के आदेश से जंगल से फल–फूल, सीधा तथा कुश लेकर जब घर लौट रहा था, उस समय संस्कार वसात् एक भ्रष्ट शूद्र जो कामी एवं निर्लज्ज था, वेश्या से रमण करता दीखा, जिससे वह काम–मोहित हो गया। घर लौटने पर भी, सदैव वह मन की आँखों से वही कामोपभोग का दृष्य देखता, मोहापन्न हो उठा। काम वेग से विचलित मन को अजामिल रोकने का जितना प्रयास करता काम–पिशाच उतना ही सजीव रूप धारण कर उसके चेतना पर अधिकार कर लेता। अन्ततः वह उस वेश्या को अपनाकर अपने पूर्व के सारे सुकृत पर पानी फेरता हुआ, सर्व दुष्कर्म परायण हुआ जीवन–यापन करने लगा था। जैसा उपर बताया गया है कि अजामिल जितेन्द्रिय, मंत्रज्ञ पुरुष था। उसके पतन को ही देखकर महात्माओं ने उसके उद्धारार्थ उसे अपने नवजात बालक का नाम नारायण रखवाया। कर्म की गति को सिद्ध महापुरुष ही बदलने में समर्थ हुआ करते हैं। योग से भ्रष्ट हुये चित्त को पुनः सन्मार्ग पर सद्गुरु शक्ति ही लाने में सक्षम है। जिसने योग मार्ग (श्रेय मार्ग) का अवलम्बन लिया है और कदाचित संस्कार वसात् उसका पतन होता है तो भी उसका पुर्वार्जित पूण्य उसे समय पाकर सद्मार्ग पर आरूढ़ कर ही देता है। " **न हि कल्याण कृत्कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति** "। भगवान श्री कृष्ण ने गीता में अर्जुन के इस प्रश्न का उत्तर देते हुये कि क्या योगभ्रष्ट शरदकालीन बादलों की तरह विषय वायु द्वारा नष्ट कर दिये जाते हैं ? परमात्मा ने आश्वस्त किया और कहा हे ! अर्जुन कदापि नहीं, योग भ्रष्ट की दुर्गति कभी नहीं होता।

एक बात और, मृत्यु के आसन्न काल में अथवा सामन्यतः भी अशरीरी यमदूत अथवा देव दूत उन्हीं को दिखाई पड़ेंगे जिनका पहले से मनः शरीर क्रियाशील होगा। श्रीमद्भागवत में वर्णन है कि अजामिल अतिशय मूढ़ हुआ जीवन व्यतीत कर रहा था कि मृत्यु–समय आ पहुँचा। अजामिल ने देखा कि उसे ले जाने के लिये अत्यन्त भयावह तीन यमदूत आये हैं। उनके हाथों में फाँसी है, मुँह विकृत है उनके शरीर के रोएँ खड़े हैं। अजामिल अत्यन्त व्याकुल होकर चिल्लाया–नारायण। यही उन महात्माओं द्वारा अजामिल के सदगति हेतु किया गया संकल्प था। अतः भगवान के पार्षदों ने देखा कि यह मरते समय हमारे प्रभु ! नाम का आश्रय लिया है। यमदूत किस अधिकार से इसके प्राण खींच रहे हैं। यमदूत एवं भगवान के पार्षदों के बीच हुये वाद–विवाद को अजामिल पूर्ण एकाग्रता से सुनता है और उसे अपने श्रेष्ठ आचरण से पतित होने का ग्लानि उत्पन्न होता है।

प्राणाकर्षण करने से बलपूर्वक रोके जाने पर यमदूतों ने पूछा–आप किसके दूत हो, इसे (अजामिल) ले जाने से क्यों रोक रहे हो ? क्या तुम लोग कोई देवता, उपदेवता अथवा सिद्धश्रेष्ठ हो ?

कस्य वा कुत आयाताः कस्मादस्य निषेधथ।

किं देवा, उपदेवा वा यूयं किं सिद्धसत्तमा ।।33।। अ.1, स्कं.6

श्री विष्णु पार्षदों ने अपना परिचय देकर यमदूतों से पूछा – क्या तुम्हें धर्म का लक्षण और तत्व का ज्ञान है ? उन्हें बतालाओ।

यम दूतों ने जो बताया वह सार रूप में पठनीय है–

1. वेदों ने जिन कर्मों का विधान किया है, वे धर्म हैं और जिनका निषेध किया है, वे अधर्म हैं।

2. जीव शरीर एवं मनोवृत्तियों से जितने कर्म करता है उसके साक्षी सूर्य, अग्नि, आकाश, वायु, इन्द्रियाँ, चन्द्रमा, सन्ध्या रात, दिन, दिशाएँ, जल, पृथ्वी, काल और धर्म होते हैं।(मानव के सुकृत एवं दुष्कृत कर्मों का प्रभाव पंच महाभूतों के साथ स्वयं पर भी व्यष्टि रूपेण तथा समष्टि रूपेण सभी पर पड़ता है)।

3. सत्त्व, रज और तम–इन तीन गुणों के भेद से– पुण्यात्मा, पापात्मा और पुण्य–पाप दोनों से युक्त सुखी, दु:खी सुख–दु:ख से युक्त इस लोक में और परलोक में जीव भोगता है।

4. सिद्धपुरुषों !जीव पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियों से रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द रूपी विषयों का सोलहवाँ मन एवं सत्रहवाँ स्वयं जीवात्मा भोगता है।

यमदूतों को फटकार लगाते हुये, श्री विष्णु पार्षदों ने कहा–

1. कोई अमृत को उसका गुण न जानकर अनजाने में पी ले तो भी वह अमर हो जावेगा, वैसे ही अनजान में उच्चारण करने पर मंत्र रूपी भगवान का नाम अपना फल अवश्य देगा।

2. आग का स्पर्श ज्ञान में हो, अनजान में हो, उसकी दाहकता का बोध होना ही होगा।

3. देखो, साधारण लोग पशुओं के समान धर्म–अधर्म का स्वरूप न जानकर किसी सत्पुरुष पर विश्वास कर लेते हैं, उनके गोद में सिर रखकर निर्भय और निश्चिन्त हो जाते हैं। (सिद्ध सद्गुरु के शरणागत हुये जीव के संस्कारों का संचालन स्वंय सदगुरु करते हैं) अजामिल को जिन महात्माओं ने उसे अपने बालक का नाम " नारायण " रखने का आदेश दिया था जिसका अजामिल ने पालन किया। अपने छोटे बच्चे में आसक्त व उसे बार – बार " नारायण " नामोच्चारण द्वारा स्मरण करने से अजामिल एक प्रकार से " **अभिमत् ध्यानद्वा** " पा.सू. का पात्र बन गया था।

अत: मृत्यु काल में उसने अपने मन:चक्षु के सामने यमदूतों एवं विष्णु पार्षदों का दर्शन ही नहीं धर्म के मर्म को भी जाना।

अब वैराग्य चित्त से सबका त्याग कर हरिद्वार जाकर तप करता हुआ सायुज्य मोक्ष प्राप्त किया।जिसका वर्णन इसके पूर्व लेख में किया जा चुका है।

अस्तु सिद्ध सदगुरु प्रदत्त मंत्र का भाव से अथवा अभाव से किया गया जाप साधक को आगे ले जाने वाला सिद्ध होता है।

" योग में आरोग्यता "

– डॉ. जे. पी. शर्मा, पौंटा साहिब, जि. सिरमौर, हि.प्र.

आज की भाग दौड़ की जिन्दगी में मनुष्य ठीक से खाना पीना भी नहीं कर सकता। प्राय: धन कमाने की चाहत सुबह नींद खुलते ही शुरु हो जाती है। धनोपार्जन के लिये नये नये प्लान तैयार करने लग जाता है। ठीक समय पर भोजन न करने से शरीर में अनेकों प्रकार की परेशानियाँ होने लगती हैं। पाचन तंत्र ठीक से काम नहीं कर पाता अत: स्वास्थ्य गड़ बड़ाने लगता है। अगर आप सुन्दर स्वास्थ्य रखने के शौकीन हैं, तो हमारे पूर्वजों द्वारा बतलाये गये रास्तों पर चलने का प्रयत्न करिये। व्यस्तता भरी जिन्दगी में स्वस्थ रहने की आवश्यकता बढ गयी है। अपने जीवन में हम जो भी कार्य करते हैं, उनकी पृष्ठभूमि में अगर आरोग्य और सुन्दर स्वास्थ्य है तो आप का जीवन सफल है। अस्वस्थ मनुष्य का जीवन प्राय असफल हो जाता है। वह मनचाहा न तो कर सकता है, और न खा पी सकता है। अंग्रेजी की कहावत है – " हैल्थ इज वैल्थ " । हिन्दी में इसे एक तन्दुरुस्ती हजार नियामत कहके पुकारा जाता है।

आपके पास अकूत धन दौलत है, परन्तु शरीर से रोगी हैं, तो आप मनचीता नहीं कर सकते, क्यों कि सुन्दर स्वास्थ्य बाजार में खरीदने को नहीं मिलता, परन्तु यदि आप का स्वास्थ्य सुन्दर है, तो धन दौलत अपने परिश्रम से कमा सकते हैं। किसी ने ठीक ही कहा है–

" इफ वैल्थ इज लौस्ट नथिंग इज लौस्ट।

इफ हैल्थ इज लौस्ट, ऐवरी थिंग इज लौस्ट ।। "

मानव जीवन का मूल उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति का माना गया है। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये आपके सुन्दर स्वास्थ्य का होना आति आवश्यक है। हमारे धर्मशास्त्रों में कहा गया है कि सुन्दर स्वास्थ्य से जीवन में सुख शान्ति रहती है। अत: स्वास्थ्य ही परम धन है। शास्त्रों में स्वास्थ्य के बारे में कहा गया है–

" पहला सुख निरोगी काया, दूसरा सुख घर में होमाया,

तीसरा पत्नि सुलक्षणा, बच्चे आज्ञाकारी, घर में हो बुजुर्गों की छत्र छाया ।। "

कृपया विशेष ध्यान दें :-

रात्रि का भोजन सोने से दो घंटे पहले किया करें। भोजन से पूर्व अपने हाथ, मुंह शीतल–ताजे जल से धोकर खाने पर बैठें। भोजन पूर्व अथवा उत्तर दिशा की तरफ करके करें। भोजन करते समय हाथ, पैर, मुँह गीले रखने से आयु बढ़ती है। भोजन धीरे–धीरे खूब चबाकर करें, इससे पाचन किया उत्तम रहती है तथा रक्त भी खूब बनता है। ठूंस – ठूंस कर भोजन

कदापि न करें तथा चौथाई पेट खाली रखें जिससे सांस ठीक से चलती रहे। भोजन करते समय शान्त रहें, बातचीत न करें क्योंकि बातचीत करने से भोजन अच्छी तरह चबाया नहीं जा सकता।

अतः भोजन सदैव तनाव मुक्त तथा प्रसन्नचित्त होकर ही करें ऐसा करने से पाचन क्रिया सुदृढ़ होने के साथ विभिन्न पाचक रसों, हार्मोन्स तथा विटामिन्स की मात्रायें अधिक बनती हैं। भोजन अपने प्रभु को अर्पित करके, प्रसाद रूप में ग्रहण करना चाहिये। गौ ग्रास निकालने का अभिप्राय ईश्वर को अर्पण करना ही होता है। खाने को जैसा भी मिले, उसे प्रसन्नतापूर्वक खायें, तथा खाने में कमियाँ न निकालें। हमारे शास्त्रों में अन्न को ब्रह्म कहा है, उसे ब्रह्म समझते हुये खायें। ऐसा करने से शरीर सुडौल तथा सुन्दर बनता है। भोजन में हरी सब्जियों का उपयोग अधिक करें। खाना खाने को बैठने के साथ जल पात्र अवश्य लेकर बैठें। आवश्यकता होने पर जल तुरन्त पिया जा सके। वैसे भोजन करते समय कम से कम पानी पीयें। भोजन सुपाच्य तथा सन्तुलित होना चाहिये। भोजन में रोटी, दाल, सब्जी, चावल, दही, चटनी तथा सलाद का स्तैमाल अवश्य करें। खाना समाप्ति पर मुँह की सफाई तुरन्त करें। भोजन के कम से कम एक घंटा बाद घूँट-घूँट कर एक गिलास पानी पीयें। कई लोगों को आदत होती है खाने के बाद चाय या कौफी पीने की, ऐसा करना कदापि ठीक नहीं होता। भोजन के कम से कम तीन घंटों तक कुछ न खाया और पीया जाय। एक चाय या कौफी का अन्तर कम से कम तीन घंटों का होना चाहिये। हाँ पानी दिन में कम से कम आठ या दस गिलास अवश्य सेवन करें।

क्या आपने कभी सोचा है ? हमें भूख क्यों लगती है ? इसका मुख्य कारण है आमाशय में पित्त का निर्माण। जब पित्त पेट में ज्यादा बनने लगता है, तब हमें भूख का अहसास होता है। पित्त शाँन्ति मधुर पदार्थों से शीघ्र होती है। यही कारण था कि हमारे पूर्वज, खाने के साथ गुड़ खाया करते थे। भोजन के अन्त में कफ की प्रबलता होने लगती है उसके शमन के लिये तिक्त तथा कड़वे भोज्य पदार्थों का सेवन अन्त में ही करना ठीक रहता है। षट रस व्यंजनों (मीठा, खट्ठा, नमकीन, कड़वा, तीखा तथा कसैला) का समावेश भोजन में अवश्य रखना चाहिये क्योंकि शरीर को इनकी आवश्यकता होती रहती है।

भोज्य पदार्थ तीखे तथा ज्यादा मसालेदार नहीं होना चाहियें। अति सर्वत्र वर्जते। ज्यादा मसाले शरीर पर दुष्प्रभाव डालते हैं तथा यकृत को कमजोर बनाते हैं। भूख लगने पर ही भोजन करना श्रेयस्कर होता है। भोजन में चिकने-चुपड़े पदार्थ कम हों तथा रेशे वाली सब्जियाँ, सलाद, फल इत्यादि प्रचुर मात्रा में रखें। इनसे पेट साफ रहता है। भोजन करते समय पानी पीने से लार की पाचन शक्ति कमजोर हो जाती है।

भोजन के समय फल, खाने से पूर्व खा लेने चाहिये परन्तु केला शाम के समय नहीं खाना चाहिये। खीरा-ककड़ी भी शाम के भोजन के समय न खायें। टमाटर सलाद के रूप खाना लाभकारी है। नमक का प्रयोग कम से कम करें तथा आयोडीन युक्त नमक का सेवन करें। निम्न

रक्त चाप वाले रोगी नमक थोड़ा ज्यादा ले सकते हैं। लाल मिर्च न खायें अगर चटपचा जायका बनाना हो तो हरी मिर्च कुत्तर के खायें।

भोजन के पश्चात तुरन्त पेशाब को जाना चाहिये, ऐसा करने से पथरी की बीमारी नहीं होती है। दस–बीस कदम इधर–उधर घूमने से भोजन पचने में शीघ्रता होती है। हो सके तो कम से कम पाँच से दस मिनटों तक वज्रासन में बैठे, इससे पाचन तंत्र सुदृढ़ होता है तथा पचाने वाले रसों की उत्पत्ति शीघ्र होने लगती है, खट्टापन कम बनता है। शाम के समय दही भूलकर भी सेवन न करें। भोजन शीघ्र पचे, इसके लिये सीधे लेट जाँय तथा आठ बार श्वास–प्रश्वास पूरे करें फिर दाहिने करबट लेट कर सोलहबार तथा बाई करबट लेटकर बत्तीस बार श्वास–प्रश्वास लें। साँस आराम से लें जल्दबाजी न करें। ऐसा करने से भोजन शीघ्र पचता है तथा शरीर पोष्टिक बनता है जिससे आयु में वृद्धि होती है।

रात को सोने से पूर्व पैरों को पानी से धोयें तथा कड़वे तेल की तलवों पर मालिश करें, ऐसा करने से शीघ्र तथा गहरी नींद आती है। सोते समय थोड़े से मैथी के दाने जल के साथ लेने से मधु का स्तर ठीक रहता है। त्रिफला चूर्ण पानी के साथ अथवा दो चम्मच ईसफगोल की भूसी दूध के साथ लेकर सोने से सुबह पेट साफ हो जाता है तथा पेट में गैस भी नहीं बनती है। दूध लेने के बाद पानी नहीं पीना चाहिये क्योंकि पीलिया हो जाता है। हाँ, सोते समय नाभि में तेल लगाने से होंठ नहीं फटते। खाना खाने के पश्चात सोंफ तथा मिश्री के दाने चबाना स्वास्थ्य के लिये लाभकारी होता है। मुँह की दुर्गन्ध दूर हो जाती है। खाना ठीक से पच जाता है। सदैव दक्षिण अथवा पूर्व की तरफ सिर करके सोने से अच्छी नींद आती है। सोते समय ईश्वर स्मरण अवश्य करें तथा दिन भर के कार्यो की समीक्षा करें। सही किये गये कार्यो के लिये ईश्वर का धन्यवाद करें तथा झूँठ या गलत कार्यों के लिये प्रभु से क्षमा प्रार्थना करें तथा भविष्य में सुधार लाने हेतु संकल्प लें। सोने से पूर्व पानी पीकर ही सोयें। जब भी मूत्र त्याग के लिये जायें, आकर पानी अवश्य पीयें। पेशाब तथा मल त्याग के वेग को रोकें नहीं, तुरन्त करें। पेशाब तथा मल त्यागते समय जबड़ा भीच कर रखने से पायरिया नहीं होता। सोते समय गहरी गहरी साँस लेनी चाहिये।

ब्रह्म मुहुर्त में उठने की आदत डालिये। ईश्वर स्मरण करते हुये जागें। उठते समय शरीर को धीरे–धीरे खींचें, अंगड़ाई लें, जिससे तनाव समाप्त हो जाता है। आलस दूर हो जायेगा। शरीर का एक –एक तन्तु क्रिया शील तथा चैतन्य हो जाता है। जिधर की नासिका छिद्रों से साँस चल रहा हो, उसी तरफ से उठें तथा पृथ्वी पर पैर रखने से पूर्व पृथ्वी माँ से क्षमा माँगे तथा नमन करें। पूजा घर में अपने इष्ट देवी–देवतओं के दर्शन करें तथा अपने माता–पिता तथा बड़ों के चरण स्पर्श करें। ऐसा आचरण करने से सात्विक भाव जागृत होते हैं तथा बड़ों का आशीर्वाद प्राप्त होता है। आपको बड़ों की शक्ति प्राप्त होती है। शौच जाने से पूर्व एक या दो गिलास पानी अवश्य पीयें। आवश्यकतानुसार पानी में नीबू निचोड़ कर पीयें। पानी में

शहद मिलाकर पीने से चर्बी की बीमारी नहीं होती। यकृत की परेशानियाँ दूर भगाने के लिये थोड़े से चुटकी भर चावल चबाकर पानी पीने से लिवर सबल बनता है। मुँह में पानी भरकर आँखों पर सात–सात बार पानी फेंके, इससे नेत्रों की ज्योति बढ़ती है। दाँत साफ रखें इससे आप तरो ताजा महसूस करेंगे। दाँत साफ करने वाला ब्रुश नरम बालों वाला होना अच्छा रहता है। धीरे–धीरे ब्रुश का प्रयोग करें ताकि मसूड़े छिलें नहीं। दाँत साफ करने के लिये ज्यादा से ज्यादा दंत मंजनों का स्तैमाल करें इससे मसूड़ों की मालिश भी हो जाती है। जिस कारण पायरिया की बीमारी नहीं हो पाती। मध्यमा अगुंली मंजन करने को ठीक रहती है। तर्जनी अंगुली से मंजन न करें क्यों कि जबड़े पर दबाव रहता है, अतः दाँतों में शिथिलता आ जाती है।

शौच जाने से पूर्व एक या दो गिलास ताजा पानी अवश्य पीये। पानी औषधि की तरह कार्य करता है तथा मल साफ करता है। मल विसर्जन से पूर्व पाँच या दस मिनट इधर–उधर घूमलें, अगर हो सके तीन–तीन बार चक्रासन कर लें, जो कब्ज को तोड़ता है तथा पेट साफ हो जाता है। पंजों के बल बैठ कर मल विसर्जन करने में आसानी रहती है। मल तथा मूत्र त्यागते समय जड़ों को भीचकर रखें, इससे लकवा नहीं होता है।

चाय, कौफी अथवा दूध का सेवन शौच के बाद ही करना चाहिये। ध्यान रहे चाय या कौफी पीने के साथ कुछ न कुछ अवश्य खायें। खाली पेट में ये चीजें, पीने से हानि होती हैं। चाय–कॉफी पीने के तुरन्त बाद ही स्नान भूल कर न करें, इससे मनुष्य को कई तरह की ऐलर्जी हो जाती हैं।

स्नान से पहले कम से कम आधा घंटे तक टहल कदमी करें। अगर व्यायाम या योगासन या प्राणायाम करना चाहते हैं तो करलें,परन्तु आधे घंटे तक स्नान कदापि न करें अन्यथा हानि हो सकती है। हाँ, स्नान के बाद योगासन, प्राणायाम तथा व्यायाम आसानी से किये जा सकते हैं। स्नान करने से पूर्व नाभि, कान नाक तथा दोनों पैरों के नाखूनों की तेल से मालिश करें तो कितना भी शीतल जल हो, कोई हानि नहीं होती। मुँह में पानी भर कर सिर पर पानी डालना हितकर होता है। इससे शरीर की चेतनाशक्ति बढ़ती है। नहाने के पानी में थोड़ा सा गिरि का तेल या नींबूरस या फिटकरी चूरा अथवा नमक मिलाकर नहाने से त्वचा सूखी–खाज खुजली इत्यादि नहीं होती है। ध्यान रहे नंगे होकर नहाना आचरण के विपरीत है इससे कामुकता बढ़ती है। नहाने के पश्चात फिटकरी डालकर पानी से कुल्ला करने से मुँह तथा गला भली प्रकार साफ हो जाता है, मुँह की दुर्गन्ध मिट जाया करती है। दोनों कानों में मध्यमा अँगुली डालकर बीस बार हिलाने से मस्तिष्क के ज्ञान तन्तु सजग तथा क्रियाशील हो जाते हैं।

स्नान के बाद ईश्वर की पूजा–अर्चना भी करनी चाहिये। धूप वत्ती, ज्योति जो भी करनी हो करें। इससे मन को शान्ति मिलती है। प्रतिदिन सूर्य को अर्घ देने से शरीर में आरोग्यता आती है। सूर्य को जल देने के लिये तांबे के पात्र का उपयोग करें। सुन्दर स्वास्थ्य के लिये सदैव सात्विक आहार करें। तामसिक खाद्य पदार्थ मन तथा बुद्धि की चेतना शक्ति को

कमजोर करते हैं।

सुबह के नास्ते में पपीते का उपयोग स्वास्थ्य के लिये हितकर होता है। पपीता गैस को दूर करता है तथा कब्ज को भगाता है। कब्ज के लिये अमरूद भी लाभकारी होता है, बवासीर ठीक करता है तथा गाढे मल को पतला तथा पतले मल को गाढ़ा करके पेट साफ करता है। परन्तु अमरूद नास्ता लेने के बाद ही खाना हितकर कहा गया है। गैस, अम्लता अमरूद के सेवन से ठीक हो जाती हैं। वैसे फल हमेशा नास्ता या खाने से पूर्व ही खाने चाहिये, परन्तु केला खाली पेट नहीं खाना चाहिये क्यों कि खट्ठी डकारें आने लगती हैं तथा पेट गुम्म हो जाता है। दूध से बेहतर दही तथा दही से अच्छी छाछ होती है। हर पदार्थ को खूब चबा–चबा कर खाना चाहिये। दही के सेवन से खून पतला बनता है। प्रत्येक खाने–पीने के बाद मूत्र विसर्जन को अवश्य जाना चाहिये। नास्ते में आलू पोहा अच्छा रहता है। खाने में प्रोटीन तथा विटामिन से भरपूर पदार्थ खाने चाहिये। दही चिड़वा मिलाकर खाने से दिल मजबूत होता है। नारंगी खाने से शरीर में विटामिन 'सी' की मात्रा भरपूर मिलती है। विटामिन 'सी' बीमारियों से लड़ने में सहायक होता है। नारियल पानी पीने से पथरी की परेशानी दूर हो जाती है तथा पेट भी ठंडा बना रहता है।

गर्भवती महिलाओं के लिये नारंगी विशेष लाभ दायक रहती है। नास्ते तथा भोजन में रेशे वाली साग सब्जी का प्रचुर मात्रा में उपयोग होना चाहिये। भिंडी, टमाटर, पालक, मैथी, मूली, गाजर, गोभी आदि में रेशा अधिक पाया जाता है, परन्तु रात्रि के समय मूली नहीं खानी चाहिये। वैसे मूली गैस, वायु विकार दूर करती है। शरीर को पतला बनाने में मूली सहायक होती है। अदरक का प्रयोग करना न भूलें। मसाले कम उपयुक्त मात्रा में लेने चाहिये। तड़के में अजवाइन, सूखी मैथी का प्रयोग मधु विकार दूर करता है। घी की जगह तिल का तेल या सूरज मुखी का तेल अति उपयुक्त रहता है। इनके प्रयोग से कोलेस्ट्रोल का स्तर ठीक बना रहता है।

सामान्यतः सुबह का नास्ता साढ़े आठ से दस बजे तक कर लेना चाहिये। दोपहर मध्यान भोजन दो बजे तक तथा सायं रात्रि का भोजन नौ बजे तक समाप्त कर देना चाहिये ताकि प्रत्येक खाने में तीन से चार घंटे का अन्तर हो जाय। शाम सोते समय दूध पीना हो तो इलायची के साथ पीयें जिससे आसानी से पच जाय। दूध के साथ नमकीन पदार्थ लेना वर्जित है। करेला, कढ़ी, लस्सी या दही खाने के साथ या बाद में दूध का सेवन न करें। सुबह तथा शाम शौच जाना ग्रहस्थियों को लाभ प्रद होता है। बार–बार शौच जाना भी बीमारी का लक्षण होता है। इसीलिये कहावत है – " एक बार जाय–योगी, दो बार जाय भोगी, ज्यादा बार जाय तो रोगी "। अपने मुखमण्डल का तेज बढ़ाने के लिये रूई के साथ कच्चे दूध का लेप करें तथा मालिश करें। फिटकरी युक्त पानी से मुँह धोने से प्रदूषण का प्रभाव नहीं होता। जब भी बाहर से घर आयें हाथ–पैर मुँह साफ करना न भूलें। जब भी पानी पीयें धीरे–धीरे तथा बैठ कर ही पीयें।

खड़े होकर दूध पीना अच्छा होता है। शरीर में गर्मी का अनुभव होने पर शीतली

याशीत्कारी प्राणायाम करें। सर्दियों में ठंड लगने पर सूर्य भेदी प्राणायाम करें। कटहल खाने के बाद पान नहीं चबाना चाहिये, इससे पेट में पीड़ा होने लगती है। फल या सूखी मेवा खाने के बाद पानी न पीयें। घी–शहद समान मात्रा में मिलाकर न खायें, जहर बन जाता है। सादा पानी में शहद मिलाकर पीने से मोटापा कम हो जाता है। वजन बढ़ाने के लिये गर्म दूध में शहद मिलाकर पीयें।

उपर्युक्त प्राकृतिक नियमों का पालन करके मनुष्य आरोग्यता प्राप्त कर सकता है। आवश्यक यह है कि अपने दैनिक कार्य सदैव समय पर नियमानुसार किये जाँय तो सुन्दर स्वास्थ्य बनाया जा सकता है। तभी हम कामना कर सकते हैं –

"सर्वे सन्तु: सुखिन: सर्वेसन्तु: निरामया।

सर्वेभद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित दु:ख भाग्यवेत ।।"

मेरे परमाराध्य पूज्य सद्गुरु योग योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के पावन चरण कमलों में सादर कोटि–कोटि साष्टांग प्रणाम व सभी गुरु भाईयों को जय गुरु देव सहित !

नर-देह में नारायण

– डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी, गोरखपुर

बात जुलाई 1956 की है। फिरोजाबाद के हनुमान मन्दिर में कोई योगी आये हुए हैं, ऐसा मेरे पिता श्री को एक सज्जन ने बताया। मैं और पिता जी उन्हें देखने गये, दर्शन करने नहीं। कुर्ता–धोती पहने भारी शरीर के एक सज्जन पलंग पर विराजमान थे। अनेक दाढ़ी वाले व्यक्ति शिष्य गण उनके पास थे। मेरे मन में योगी की वही पुरानी छवि थी–लम्बी दाढ़ी कम वस्त्र आदि। नवीं कक्षा का विद्यार्थी जो था। पिता जी का मन भी भरा नहीं, बोले आजकल जो दस बीस आसन करना सीख लेता है, योगी लिखने लगता है।

मैं लम्बे समय से बीमार था सो श्री गुरुदेव जी ने नेति सूत्र नेति, दूध नेति आदि बताया उसे लेकर उपचार के लिए अगले दिन पहुँच गया। परम सौभाग्य ! नेति–क्रिया श्री गुरुदेव जी ने अपने कर कमलों से कराई। दूध रामेश्वर बाबा ने पिलाया। चूँकि गुरुदेव जी ने बुलाया था सो गुरु पूर्णिमा पर हम दोनों सवाई पहुँच गये। छोटा सा आश्रम, तीन चार झोपड़ी, सब कुछ सामान्य, परन्तु शान्ति अपार ; सो बार–बार जाने का आकर्षण बढ़ा।

प्रवचन सुनने को मिले। गुरुदेव जी ध्यान करने के विधि में अपने घर के छोटे बालक पर ध्यान केन्द्रित करने की सरल विधि से अर्थात् स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ने की विधि बताते थे तो दूसरी ओर माला लेकर जप का अभ्यास कराते थे ताकि उपांशु जप की विधि में बीच–बीच में मूढ़ चिन्तन न हो और भ्रम भी न रहे कि हम तो निरंतर जाप कर रहे हैं।

जहाँ हमें स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ाया जा रहा था वहीं योग और तंत्र का आधार मेरुदण्ड सीधा करके बैठने पर जोर दिया जाता था। आश्रम में आसनों के माध्यम से शरीर शुद्धि की ओर प्रगति थी तो जीवन तत्व साधन की विलक्षण उपादेयता से लौकिक से पारलौकिक की ओर गतिमान कर रही थी। दीक्षित शिष्यों के चलते–फिरते, उठते–बैठते मन्त्र जाप करने का निर्देश **" यत्र प्राणो लीयते तत्र मनोलीयते "** के योग सूत्र को चरितार्थ कर रहा था और रात्रि जप कबीर की योग निद्रा को सरल रूप में व्याख्यायित। बड़े–बड़े साधनों और सूत्रों की सरल व्याख्या और प्रक्रिया जिज्ञासु और संस्कारी साधकों को **" अमर पंथ की गैल बतावे, गावै सद्गुरु वाणी "** साकार हो रही थी।

ये समस्त कार्य उन अवतारी महापुरुष योगिराज अनन्त श्री चन्द्रमोहन महाराज जी

द्वारा सम्पादित हो रहे थे जो देखने में साधारण व्यक्ति की प्रतीति देकर भ्रम उत्पन्न करते थे। श्री गुरुदेव जी में गरिमा तो थी परन्तु अन्य आश्रमों के मठाधीशों की भांति न आडम्बर था, न ही अभिमान। हास्य था पर हँसी नहीं थी। प्रक्रिया और औपचारिक कर्मकांड का इस दरबार में अभाव था। लल्ला शब्द का संबोधन और सिर पर उनके स्नेहिल हाथ के स्पर्श से समस्त चिंता दूर हो जाती थी और निरंतर रज प्रसाद के सेवन से कष्ट मुक्ति भी। सारा कार्य सहज और अबाध गति से चलता था। तांत्रिक की भांति उपचार का न तो निर्धारित समय था और न रीति–नीति के बन्धन।

जो भी आया, जब आया उसने वरदान पाया दया के अपार भण्डार की कहीं कमी नहीं थी। तीनों प्रकार के कष्टों का उपचार था। हरि अनन्त, हरि कथा अनन्ता थी। और उस सौम्य कृपामय रूप के सम्मुख तर्क स्वतः विगलित हुआ जब उन्हीं पिताश्री ने करुणा सागर से दीक्षा ली।

एक उदाहरण बिना यह लेख अपूर्ण होगा। मेरे पिताश्री का कुछ लोगों से सम्पत्ति रक्षा का विवाद था। उन्होंने न्याय में पराजित होकर एक तांत्रिक की शरण ली और तांत्रिक चुनौती दी कि मेरे पिता का जीवन अब समाप्ति की ओर है। खुली चुनौती श्री गुरुदेव से निवेदित की गई। उन्होंने अपने गले का हार उतार कर, कपड़े में सी कर पहनने का निर्देश दिया। दिवाली सकुशल निकल गई। जनवरी में घर में बच्चा पैदा हुआ। अतः शुद्धता की बात ध्यान में रखते हुए पिता जी ने वह माला उतार दी। तीसरे दिन तांत्रिक के प्रयोग के फलस्वरूप डाक्टरी भाषा में पिता जी को हार्ट अटैक हो गया। डाक्टरों ने बताया कि आज अन्तिम रात है। यह सुनकर जहाँ सभी लोग रोने लगे वहीं बहन ने श्री प्रभु जी के समक्ष रखी वह माला उठाकर पिता जी को पहना दी। डाक्टरों के विरोध करने पर उसने कहा कि आप तो अब अन्तिम रात घोषित कर चुके हैं तो मुझे मत रोकिये।

हार पहनने के 10–15 मिनट में ही स्थिति में सुधार दिखाई देने लगा। तांत्रिक ने पुनः प्रयोग किया उसकी प्रतीति हुई पर प्रभाव नहीं। अंत में खीझकर उसने अन्तिम अस्त्र के रूप में घात (हंडिया) प्रहार किया। 11 जून 70 की शाम 06.30 बजे दिन के उजाले में एक हंडिया आती देखकर सभी विचलित हो गये। पिता जी ने मंत्र जाप प्रारम्भ कर दिया। सुखद आश्चर्य तब हुआ जब घात घर की चाहर दीवारी के बाहर घूमने लगी और घर की सीमा में प्रवेश न कर सकी। दो मिनट घूमने के बाद वह उसी दिशा में लौट गई जिधर से आई थी। और माता–पिता की रक्षा हो गई। यहाँ एक शेर याद आ रहा है :–

गर्दिश तो चाहती थी तबाही मेरी मगर

मजबूर थी किसी की दुआओं के सामने ।।

ऐसे थे कृपामय गुरुदेव जो सहजभाव से कृपा करके अपने आश्रितों की रक्षा और उनका उद्धार करते थे। उन्होंने कभी भी अपने श्रीमुख से नहीं कहा कि " मैं करता हूँ या कर दूँगा। " सदैव श्री प्रभु जी (योगेश्वर श्री श्री श्रीरामलाल जी महाराज जी) को श्रेय देते रहे। आज भले ही वे अलौकिक रूप से सहायता करते हैं परन्तु उनकी भौतिक अनुपस्थिति अक्सर मन में निराशा पैदा करती है, और एक पंक्ति बरबस याद आ जाती है।

तुम न जाने किस जहाँ में खो गये।

हम भरी दुनियाँ में तनहा हो गये।।

मनोनिग्रह का अभ्यास

गीता की यह शिक्षा कि सच्चा सन्यास आसक्ति रहित कर्म में है, संसार का त्याग करने में नहीं, कोई ऐसी उपपत्ति नहीं है, जिसे संसार का त्याग करने के अनिच्छुक लोगों के समर्थन अथवा सफाई के लिए प्रस्तुत किया गया हो। वह मनुष्यों के जीवन को प्रत्यक्षतः गढ़ने के लिए आचार के रूप में प्रतिपादित की गई है, जिससे कि उनमें निःस्वार्थता और अलिप्तता की आदत तथा स्फूर्ति विकसित हो। बत्तख पानी में तैरती है, परन्तु बाहर निकलने पर अपने शरीर का सब पानी झाड़ देती है। हमें उसी के समान संसार में रहना सीखना चाहिए। हमारे काम में दक्षता, सुधारता और कुशलता का अभाव न हो और फिर भी हम स्वार्थपूर्ण आसक्ति को विकसित न होने देने के लिए सतर्क रहें। अलिप्तता का यह भाव कायम रखने के लिए मनोनिग्रह का सतत् अभ्यास आवश्यक है।

मैं जाना चाहूँ प्रभु नगरिया

– श्रीमती शारदा सिसौदिया, इन्दौर (म.प्र.)

भक्त अपने गुरुदेव को ढूँढ रहा है
उनसे मिलने के लिए आतुर है
उसकी मनोदशा का सजीव चित्रण :-

जय प्रभु देवा जय सद् गुरुदेवा
हम इत उत ढूँढत नगरी नगरी
तुम जाए बसे सँवाई नगरी
दया करो दयानिधि
भटक भटक हारी

बता दो अपनी नगरी
मैं जाना चाहूँ प्रभु की नगरिया
बंधन बनी माया की पैंजनिया
इत उत भटक भटक थकी

पड़ी राग द्वेष की नगरिया
मैं जाना चाहूँ प्रभु की नगरिया
ना खोज पाऊँ प्रभु की नगरिया
थकि थकि जाऊँ बीती जावे उमरिया

ठौर न पाऊँ, चैन ना पाऊँ
कब उठ जायेगी जग की बजरिया
कारी कारी विषम बदरिया
ना चमकेसोनी सोनी बिजुरिया

मन घिर–घिर जाये, राह ना पाये
खोज ना पाऊँ, प्रभु नगरिया
ना पाऊँ साँवली सलोनी मुरतिया थकि – थकि जाऊँ
उलझी उलझी जाऊँ भव–सागर की भी पजलहरिया
गुरुदेव तुम आओ रूपधर साँवलिया

योग पथ पर बढ़ा दो
हमरी शेष रही उमरिया
ना जाने कब उठ जायेगी जीवन की बजरिया
दूर बसी दूर प्रभु की नगरिया

मैं जाना चाहूँ प्रभु की नगरिया
तुम हाथ थाम लो तो
मैं चल पडू प्रभु की नगरिया
मैं जाना चाहूँ प्रभु की नगरिया

गुरु को पावै कोई कोई

– हेमराज चोपड़ा, मंडी (हि.प्र.)

जनवरी 2001 इलाहाबाद का महा कुम्भ पर्व। तुलसी मार्ग पर श्री सिद्ध गुफा संवाई की ओर से श्री पूर्ण चन्द ' दादा ' द्वारा विशाल भूखण्ड पर निर्मित पर्ण कुटीर। यूं तो प्रतिवर्ष मार्च मास में कल्पवास के लिए गुरुदेव महाराज जी के समय से ही श्री सिद्धगुफा सवाई की ओर से समुचित व्यवस्था रहती ही है, फिर यह तो महाकुम्भ का भी पावन अवसर था, इसलिए व्यवस्था भी विशेष प्रकार से की गई थी। मण्डी हिमाचल से हम बहुत से गुरु भाई बहिनों को इसमें भाग लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसमें दैनिक नियमावली बहुत सुन्दर रहती थी जिसका संचालन योगाचार्य डॉ. दास लाल शर्मा जी द्वारा किया जा रहा था। प्रातः 5 बजे त्रिवेणी स्नान, तत्पश्चात ध्यानाभ्यास, गीता पाठ इत्यादि का सुन्दर कार्यक्रम रहता। इस कल्पवास में जो विशेष कार्यक्रम था वह था श्री मद्भागवत ज्ञान यज्ञ का आयोजन। योग्य विद्वान व्यास जी द्वारा इसका निष्पादन किया जा रहा था। इसका प्रारम्भ सद्गुरुदेव के परम भक्त योगीराज श्री ओमप्रकाश पालीवाल द्वारा गाई जाने वाली गणेश वन्दना –

" गाइए गणपति जग वन्दना "

से होता था। सुमधुर स्वर में भावपूर्वक गाई जा रही यह गणेश वन्दना बरबस अपनी ओर आकृष्ट कर लेती। कथा के मध्य में कुछ भजन भी गाए जाते। ऐसा ही एक भजन हमारी गुरु बहिन जो इलाहाबाद से ही हैं, ने गाया जिसके बोल थे –

" गुरु गुरु तो सभी कहें

पर गुरु को ध्यावे कोई कोई,

ध्यान भी उनका सभी करें,

पर गुरु को पावे कोई कोई,

गुरु गुरु तो..........

अत्यन्त भाव विभोर होकर गाए जा रहे इस भजन का जादुई प्रभाव पड़ रहा था। ऐसा प्रतीत होता था मानों वह देवी साक्षात अपने सद्गुरुदेव को यह भजन अर्पित कर रहीथी और मानों वे कृपानिधान भी स्वयं इसका रस पान कर रहे हों। एक अत्यन्त भक्तिपूर्ण वातावरण बन रहा था जिसे देखकर श्री सिद्धगुफा संवाई की याद ताजा हो रही थी जब श्री सद्गुरुदेव महाराज के चरणों में उनके बच्चे भावपूर्ण भजनों से उन्हें रिझाने की चेष्टा करते और जब वे कृपानिधान कृपा पूर्वक धीरे–धीरे गर्दन हिलाकर भजन गायक का अनुमोदन करते तो सारा

वातावरण आध्यात्मिक हो जाता। गुरु कृपा सब पर बरसने लगती कोई ध्यानमग्न हो जाता, किसी की भस्त्रिका चलने लगती, कोई उनके प्रेम में अश्रु बहाता नजर आता आदि। कुछ इसी प्रकार का आनन्द इलाहाबाद के हमारे शिविर में बरस रहा था।

भजन चल रहा था -

पाने को मुरादें दर पर,

गुरुदेव के कितने आते हैं,

जिसकी जैसी श्रद्धा हो फल

उसके मुताबिक पाते हैं

शीश झुकाते हैं कितने

पर शीश चढ़ावे कोई कोई

गुरु गुरु तो.........

जब वह बहिन ढोलक की थाप पर मुखड़ा दोहराती " गुरु को पावे कोई कोई " तो बरबस अपने अन्दर झाँकने को विवश हो जाते कि क्या हम भी इतने भाग्यवान हैं कि उन " कोई कोई " में शामिल हो सकते हैं जिन्होंने सच में गुरुदेव को पा लिया है ? शायद नहीं। कहने को तो हम कह देते हैं कि हमने दीक्षा ले ली है, गुरु बना लिए हैं, यही नहीं गुरुदेव की हम पर बहुत कृपा है हमारे बिगड़े काम भी बन रहे हैं आदि । हमें और क्या चाहिए। बल्कि हालत तो यह भी है कि जब तक हमारा कोई जटिल कार्य पूर्ण हो नहीं जाता, हम गुरुदेव के सम्मुख नत मस्तक रहते हैं लेकिन कार्य सम्पन्न होने पर गुरुदेव को याद भी नहीं करते बल्कि इसका श्रेय अन्य देवी देवताओं को देने से भी नही हिचकिचाते । ऐसे एक नहीं कई उदाहरण हैं। ऐसे में श्री सद्गुरुदेव महाराज द्वारा बताई गई एक घटना याद आती है। प्रभु श्री रामलाल जी महाराज के समय में अमृतसर में योग प्रचार कार्यक्रम बहुत उत्तमता से हो रहे थे। लोगों की आध्यात्मिक उन्नति के साथ–साथ उनकी लौकिक इच्छाओं की भी पूर्ति हो रही थी। खूब सत्संग होता था लेकिन धीरे – धीरे लोगों ने श्री प्रभु जी के चित्रों के साथ – साथ अन्य देवी देवताओं के चित्र भी प्रमुखता से रखने शुरू कर दिए। उनके कुछ बच्चों को यह अच्छा नहीं लगा। उन्होंने इसकी शिकायत प्रभु जी से कर दी। उन्होंने पूरी बात सुनी तो हँस कर कहा " बताएँ योगी क्या करते है ? " प्रभु जी आप बताएं क्या करते हैं "। योगी ऐसा करते हैं कि " लाइट दिखाई और पीठ फेर ली "। वे अपना कार्य कर जाते हैं। फिर उन्हें यह आकांक्षा नहीं रहती कि कोई उन्हें याद करे या न करे। अब यह शिष्य पर निर्भर करता है कि उनकी कृपा के प्रति कृतज्ञ रहे या न रहे।

श्री मद्भगवद्गीता के छठे अध्याय के 30 वें श्लोक में भगवान श्री कृष्ण कहते हैं –

यो मां पश्यति सर्वत्र,

सर्वं च मयि पश्यति,

तस्याहं न प्रणश्यामि,

स च मे न प्रणश्यति।

अर्थात् जो मुझे सब जगह देखता है जल, थल, वायु, आकाश सर्वत्र मेरा ही दर्शन करता है, सभी प्राणियों में, मनुष्य, पशु पक्षी, कीट, पतंगों में मुझे ही देखता है, ऐसा मेरा भक्त जो है, उसके लिए मैं कभी ओझल नहीं होता हूँ, और न ही वह कभी मेरी दृष्टि से कभी ओझल होता है। अर्थात सदैव ही भक्त और भगवान एक दूसरे की दृष्टि में रहते हैं। ऐसी स्थिति बन जाए, देखा देखी का यह खेल अनवरत चलता रहे, गुरुदेव की याद हरदम आती रहे तभी तो कोई कह सकता है कि मैंने गुरुदेव का, ईश्वर का प्यार पा लिया है।

महान वैज्ञानिक आर्कमडीस वर्षो से उत्प्लावकता के सिद्धान्त पर कार्य कर रहा था किन्तु अपने अनुसन्धान में उसे असफलता ही हाथ लग रही थी। एक दिन वह पानी से लबालब भरे तालाब में स्नान करने उतरा। ज्योंहि उसने तालाब में छलांग लगाई कुछ पानी तालाब से बाहर को छलक गया। यूँ तो हर बार ही ऐसा होता था। कभी इस ओर उसका ध्यान गया ही नहीं। किन्तु उस दिन उसके मस्तिष्क में यह बात आ गई कि जब कोई ठोस वस्तु तरल पदार्थ में डाली जाती है तो वह अपने आयतन के भार के बराबर तरल पदार्थ हटाती है यही तो वह जानना चाहता था। उसे अभीष्ट की प्राप्ति हो गई। इससे वह इतना उत्साहित व रोमांचित हो उठा कि वह उसी वस्त्र विहीन अवस्था में चिल्लाता हुआ सड़क पर दौड़ पड़ा कि " मैंने पा लिया, पा लिया "। उसे यह भी भान नहीं रहा कि उसने वस्त्र पहने भी हैं या नहीं अलभ्य की प्राप्ति होने पर यही स्थिति होती है। इतनी प्रसन्नता होती है कि अपने शरीर का, भले बुरे का भी भान नहीं रहता मीरा बाई, भक्त सूरदास के उदाहरण हमारे सम्मुख है। कृष्ण प्रेम में निमग्न होकर जब मीरा गाती " मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई तो उसे अपनी सुध बुध भी नहीं रहती थी। भक्त सूरदास का हाथ पकड़कर रास्ता पार करवाने वाले बाल कृष्ण जब उनका हाथ छोड़ कर जाने लगे तो सूरदास अपने आराध्य को पहचान गए। आँखों से न देख सकने वाले सूरदास मन की आँखों से और उनके पावन स्पर्श से भगवान कृष्ण को पहचान कर कहने लगे " **हाथ छुड़ावे जात हो, निर्बल जन के मोहि, हृदय से जब जाओगे मैं मानूँगा तोहि** "। इतना विश्वास केवल उसे ही हो सकता है जिसने उस ईश्वर का साक्षात्कार कर लिया हो, कह सकते हैं उसे पा लिया हो।

अंतिम मुगल सम्राट औरंगजेब के विषय में प्रसिद्ध है कि वह हिन्दुओं का कट्टर विरोधी

था। प्रतिदिन हिन्दुओं के सवा मन जनेउ उतार कर उन्हें इस्लाम धर्म अपनाने को विवश कर देता। जो नहीं मानते उन्हें जेलों में बन्द करवा देता। उसके अधीन मुलतान प्रांत का सूबेदार एक सहृदय मुसलमान था। उसके सूबे में नन्दलाल नाम का एक हिंदू पंडित था जो बहुत विद्वान था और अपनी योग्यता के कारण सारे मुलतान में प्रसिद्ध था। कई हिंदुओं और मुसलमानों के बच्चे उससे शिक्षा ग्रहण करने आते थे। स्वयं सूबेदार का लड़का भी उससे शिक्षा पाता था। नन्दलाल एक प्रसिद्ध लेखक, शायर, कथाकार और शास्त्रविद था। उसकी प्रसिद्धि की चर्चा औरंगजेब तक भी पहुंच गई। उसे बहुत क्रोध आया कि कोई हिन्दू मेरे राज्य में इतना प्रसिद्ध हो रहा है। और हिन्दू धर्म का प्रचार कर रहा है। उसने हुक्म दिया कि नन्दलाल को पकड़ कर फौरन मेरे सामने हाजिर किया जाए। हरकारा तुरन्त मुल्तान के लिए रवाना हो गया।

उधर ज्योंही मुल्तान के सूबेदार को इस बात का पता चला तो रात्रि में ही वह दो घोड़े लेकर नन्दलाल के घर पहुंच गया और सारी बात बताकर उसे मुल्तान छोड़कर भाग जाने को कहा। नन्दलाल घबरा गया और कहने लगा कि हे सुल्तान, सारे भारतवर्ष पर औरंगजेब का शासन है, मैं कहाँ जाऊँ, जहाँ जाऊँगा, पकड़ा जाऊँगा। सुल्तान ने उसे आनन्दपुर साहिब जाने का परामर्श दिया क्योंकि वहाँ उस समय सिखों के दसवे गुरु गुरु गोविंद सिंह जी का प्रभाव था जहाँ औरंगजेब का दखल नहीं था। नन्दलाल ने ऐसा ही किया। रात्रि भर चलकर प्रातः आनन्दपुर साहिब पहुंच गया। अपनी व्यथा कथा सुनाकर उसने गुरु जी से शरण माँगी। गुरु गोविंद सिंह जी ने उससे पूछा कि वह क्या कार्य कर सकता है। उसे तो आश्रय चाहिए था, कहाँ **" आप जो भी कार्य देगें मैं करुंगा "। " तो फिर भांडे मांज "** (बर्तन साफ कर)। नन्दलाल को मन ही मन बुरा तो लगा लेकिन मरता क्या न करता, और उस दिन से ही वह इस कार्य में लग गया। इस प्रकार कुछ दिन बीत गए।

इधर नन्दलाल के घर वाले परेशान कि नन्दलाल कहाँ चले गए क्योंकि जाते समय उसने किसी को कुछ नहीं बताया था। उन्हें कहीं से पता चला कि वह आनंदपुर साहिब में हो सकता है। वे ढूंढते-ढूंढते वहाँ पहुँचे तो क्या देखते हैं कि नन्दलाल वहाँ संगतों के जूठे बर्तन साफ कर रहा है। उन्हें बहुत बुरा लगा और उसे वापिस ले जाने की जिद करने लगे। तभी गुरु गोविन्द सिंह जी वहाँ आ गए। जब उन्हें बताया गया कि नन्दलाल मुल्तान का प्रसिद्ध विद्वान, लेखक, शायर और कथाकार है तो वे कहने लगे **" अरे नन्दलाल यह तुमने क्या किया, हमें बता देता कि तू इतना बड़ा विद्वान है और सारे मुल्तान में तेरी प्रसिद्धि है। हमने तुमसे जूठे बर्तन मंजवाए, यह अच्छा नहीं हुआ। तुमने तो हमें पाप का भागी बना दिया। अच्छा अब बता, हम तुम्हें क्या दें ? तू जो चाहता है, हम से निःसंकोच माँगले "।**

यह सुनकर नन्दलाल की आँखों से झर-झर आँसू बहने लगे। वाणी अवरुद्ध हो गई। बड़ी मुश्किल से दोनों हाथ जोड़कर कह पाया " हे सच्चे बादशाह, आप तो गुरुओं के भी गुरु हैं, तारन हार हैं, अन्तर्यामी हैं, आपके दर्शन तो दूर जो आपकी गली से भी गुजर जाता है वह तीन

जहान की बादशाहत अनायास ही पा जाता है, फिर मैं तो चौबीस घंटे आपकी नजरों के सामने रहता हूँ, मुझे किस चीज की दरकार हो सकती है। यह कहकर वह उनके चरणों में गिर पड़ा और गिड़गिड़ाते हुए प्रार्थना करने लगा " हे गुरुदेव, मैं अब कहीं नहीं जाना चाहता, मुझे यहीं अपने चरणों में जगह दे दें यहीं रहकर, आपकी सेवा में, अपनी बाकी जिंदगी गुजारना चाहता हूँ, मुझे अपने चरण कमलों से जुदा न करें मेरे मालिक "।

गुरुदेव के प्रेम को ऐसे ही पाया जाता है।

वे हमारे अन्तर्मन की एक – एक बात जानते हैं। उनसे कुछ छुपा हुआ नहीं है। व्यर्थ आडम्बर या दिखावा उन्हें पसन्द नहीं। वे तो बस सच्चा प्रेम चाहते हैं। हम उनके प्रेम में निमग्न होकर हर दम अपने भीतर उनकी ही झाँकी पाते रहें, उनका सतत स्मरण होता रहे, जिह्वा कुछ न कह पाए किन्तु आँखें चुप न रह पाएं, प्रेमवश अश्रुधार बहती रहे, शरीर रोमांचित हो उठे, अपनी सुध बुध भी खो जाए, उनकी याद की मस्ती हरदम छाई रहे तभी तो कोई कह सकेगा कि " हाँ, मैंने गुरुदेव का प्यार पा लिया है अर्थात गुरुदेव को पा लिया है " अन्यथा तो सब बातें ही बातें हैं बातों का क्या ?

• योग–आसन

सिंहासन

गुल्फौ च वृषणस्याध:,
सीवन्या: पार्श्वयो: क्षिपेत्।
दक्षिणे सव्य गुल्फं च,
दक्ष गुल्फं तु सव्य के।
हस्तौ तु जान्वो: संस्थाप्य,
स्वांगुली सम्प्रसार्य च।
व्यात्त वक्रो निरीक्षेत,
नासाग्रे सु समाहित:।
सिंहासनं भवेदेतत्पूजितं योगिपुङ्गवै,
बन्ध त्रयं संस्थानं कुरुते–चासनोत्तम्।।

विधि– पहले सीधे स्वभाव बैठकर अपने पैरों के दोनों गुल्फों का (अर्थात टखने को) सीवनी के दायें और बायें लगाये, दाहिने भाग में बायें टखने (एड़ी गाँठ) को एवं बायें भाग में दाहिने टखने को लगायें। इसके बाद दोनों हाथों की अंगुलियों को खूब फैलाकर दृढ़ता के साथ अपने दोनों घुटनों पर जमा कर रखें, उसके बाद सिंह के समान मुख फैलाकर लपलपाती हुई जीभ को निकाल कर भ्रमध्य को देखें, इसी का नाम सिंहासन है।

समय– साधारण पूर्वोक्त नियमानुसार शनै:शनै: अभ्यास को बढ़ायें।

लाभ– इस आसन में सिंह के बल की धारणा करने से दिल की शक्ति बढ़ती है। जालन्धर बन्ध के फलस्वरुप मन की एकाग्रता स्वाभाविक है। उड्डियान बन्ध के फलस्वरुप जठराग्नि का बढ़ना, भूख अधिक लगना

स्वाभाविक है। उड्डियान बन्ध के फलस्वरुप जठराग्नि का बढ़ना, भूख अधिक लगना स्वाभाविक है। उसके साथ–साथ यह पेट सम्बन्धी सभी प्रकार के वात रोगों का नाशक है। मूलबन्ध में अपान के उर्ध्वाकर्षण से और उपर से उड्डियान एवं जालन्धर बन्ध के लगने से प्राणापान गति रोधन होकर कुण्डलनी का बोधक है। सब प्रकार आरोग्यप्रद एवं शक्ति वर्धक है।

सच्चिदानन्द रुपाय व्यापिने परमात्मने ।

नतः श्री गुरुनाथाय ह्यविद्याग्रन्थिभेदिने।।

अर्थात् सच्चिदानन्द रूप व्यापक परमात्मा गुरु नाथ को मैं प्रणाम करता हूँ, क्योंकि वे ही अविद्या ग्रन्थि का भेदन करने वाला हैं।

श्री मद्भगवद्गीता में प्रबन्धन-सूत्र

- डॉ. राजकुमारी त्रिखा, नई दिल्ली - 110021

औद्योगिक विकास के क्षेत्र में प्रबन्धन प्रक्रिया अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। आजकल यह क्षेत्र रोजगार की दृष्टि से अत्यन्त प्रतिष्ठित क्षेत्र माना जाता है, क्योंकि इसमें धन, वर्चस्व तथा मान प्रतिष्ठा की बहुलता है। प्रायः प्रबन्धन तन्त्र को अमेरिका जैसे विकसित तथा औद्योगिक दृष्टि से समुन्नत देशों की देन माना जाता है। परन्तु यदि हम प्राचीन भारतीय व संस्कृत साहित्य पर दृष्टिपात करें, तो कौटिल्य के अर्थशास्त्र, भागवत-महापुराण, महाभारत तथा श्रीमद्भगवद्गीता में प्रबन्धन तन्त्र के बहुमूल्य निर्देश प्राप्त होते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता का ज्ञान संन्यासियों के लिये उपयोगी है-प्रायः जनता में ऐसी मिथ्या भ्रान्ति फैली हुई है परन्तु श्री गीता के अध्ययन से ज्ञात होता है, कि यह मरणोपरान्त परलोक में सद्गति पाने के लिये ही नहीं, बल्कि ऐहलौकिक जीवन को उत्कर्ष प्रदान करने वाली शिक्षाओं से परिपूर्ण, जीवन जीने की कला सिखाने वाला अद्वितीय ग्रन्थ रत्न है।

किसी भी संस्था का प्रबन्ध तीन स्तरों पर होता है। सर्वोच्च अथवा **प्रथम श्रेणी** के प्रबन्धक संस्था के स्वामी होते हैं, जो अपनी संस्था में कुछ विशेषज्ञ व प्रबन्धक नियुक्त करते हैं। ये प्रबन्धक द्वितीय अथवा मध्यम श्रेणी के प्रबन्धक होते हैं। ये मध्यम श्रेणी के प्रबन्धक पुनः अपने अधीन रहकर कार्य करने वाले व्यक्तियों की नियुक्ति करते हैं। ये कार्यकर्ता प्रबन्धन तन्त्र की तीसरी श्रृंखला है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि एक प्रबन्धक को तीन स्तरों पर समन्वय करना पड़ता है। एक ओर अपने से उच्च वर्ग के प्रबन्धकों से तालमेल बिठाना होता है। दूसरी ओर वह अपने ही समान स्तर के अन्य विशेषज्ञों से, तथा , तथा तीसरी ओर अपने अधीनस्थ, अपने से निम्न श्रेणी के व्यक्तियों से मिलजुल कर प्रबन्धन कार्य करता है। संस्था की उन्नति तथा अवनति, इन तीनों स्तरों के व्यक्तियों पर निर्भर होती है।

पूर्वोक्त इन तीनों स्तरों पर प्रबन्धन के कुछ मुख्य कार्य होते हैं। नियोजन (Planning), संगठन (Organising), निर्देशन (Directing), कर्मचारी नियुक्ति (Staffing), समन्वय (co-ordinating), रिपोर्ट करना (Reporting), तथा बजट बनाना (Budgeting) इसके अतिरिक्त नियन्त्रण (Controlling), अभिनव परावर्तन (Innovation), प्रतिनिधित्व (Representation), सम्प्रेषण (communication), निर्णयन (Decision making)अभिप्रेरणा (Motivation) भी प्रबन्धन के कार्य होते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता में तीनों स्तरों के प्रबन्धकों के लिये महत्वपूर्ण व्यावहारिक दिशानिर्देश मिलते हैं। कुछ दिशानिर्देश तो सभी स्तरों पर कार्यरत प्रबन्धकों के लिये उपयोगी है, तथा कुछ वर्गविशेष के लिये है। प्रस्तुत निबन्ध में, तीनों स्तरों के प्रबन्धकों के लिये उपयोगी

प्रबन्धन सूत्रों की चर्चा करेंगे।

प्रथम श्रेणी के प्रबन्धकों (संस्थामालिकों) के लिये उपयोगी दिशा निर्देश

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, संस्थास्वामी, अपने कार्य सम्पादन के लिये कुछ द्वितीय श्रेणी के प्रबन्धकों की नियुक्ति करते है। अगले चरण में ये नियुक्त किये गये प्रबन्धक, कर्मचारीनियुक्ति करके, उनसे कार्य करवाते हैं। इस प्रकार संस्था मालिक स्वयं कुछ भी नही करते, फिर भी उनके सहस्त्रों हाथ, पैर, आँखें, तथा कान हैं। वे काम करने के लिये सहस्त्रों कर्मचारियों की नियुक्ति करवाते है, जो उनके अधीन रह कर कार्य करते है। इस प्रकार मालिक अपने हजारों कर्मचारियों के हाथों से काम करवाते हैं, उनकी हजारों आँखों से देखते तथा हजारों कानों से सुनते हैं। इस प्रकार वे विश्वरूपधारी श्रीकृष्ण के समान है। श्रीकृष्ण भी स्वयं कुछ नही करते, परन्तु हजारों हाथों, नेत्रों, कानों व सिरों वाले है।

श्री कृष्ण का चतुर्भुजी रूप मध्यम श्रेणी के प्रबन्धकों का संकेत माना जा सकता है। उनके दो हाथ तो उनके हाड़-माँस के दो हाथ है, तथा दो हाथ उनकी प्रशासनिक शक्ति (Administrative Power) तथा वर्चस्व (Authority) है, जिनके द्वारा वे अपने अधीनस्थ कर्मचारियों से कार्य करवाते हैं। श्रीकृष्ण का लौकिक मानुष स्वरुप दो हाथों वाला है, जो तीसरे वर्ग के कार्यकर्ताओं का संकेत माना जा सकता है। ये कार्यकर्ता अपने दोनों हाथों से ही काम करते हैं। इस प्रकार श्रीकृष्ण के विश्वरूप, चतुर्भुजी रूप, तथा मानवीय रूप द्वारा तीनों श्रेणियों के प्रबन्धकों की व्याख्या की जा सकती है।

कोई भी व्यक्ति सर्वज्ञ नहीं होता, अत: संस्था स्वामी अपनी संस्था के सुचारु संचालन के लिये विशेषज्ञों की सलाह लेते हैं। उनके उचित परामर्श के अनुसार यदि कार्य किया जाता है, तो कार्यों में सफलता मिलती है, अन्यथा नही। अत: कार्य की योजना बनाने तथा कार्यशैली का निर्धारण करने वाले गुरु परामर्श दाता और निष्ठापूर्वक कार्य करने वाले कर्मचारी वर्ग का संगम होने पर ही श्री, विजय, ऐश्वर्य, कीर्ति मिलती है। श्रीकृष्ण जैसा उत्तम गुरु और अर्जुन जैसा निष्ठावान परिश्रमी कार्यकर्ता होने पर ही महायुद्ध में विजय श्री, विभूति तथा कीर्ति की प्राप्ति हुई। श्रीमद्भागवत गीता में कहा है –

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।

तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ।। (श्रीमद्भगवद् गीता 18.78)

नियोजन तथा परामर्श भी विधिपूर्वक ही किये जायें, तो संस्थास्वामी तथा विशेषज्ञ का सम्पर्क मधुर तथा प्रभावशाली रहेगा। श्रीमद्भगवदगीता का मत है कि संस्थास्वामी को संक्षेप में, स्पष्ट शब्दों में, आदरपूर्वक, तथा परामर्शदाता के प्रति श्रद्धाभाव से, विशेषज्ञ प्रबन्धक की राय पूछनी चाहिये। अर्जुन के शब्द स्मरणीय हैं–

शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् (श्रीमद्भगवद् गीता 2.7.)

इस प्रकार पूछे जाने पर विशिष्टज्ञान सम्पन्न प्रबन्धक गुरु के समान कल्याणकारी परामर्श देगा ही। जो श्रद्धा, तथा इन्द्रिय निग्रह से रहित है, उस व्यक्ति को ज्ञान प्राप्त नहीं होता, क्योंकि गीता मानती है – **श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं, तत्परः संयतेन्द्रियः।** (श्रीमद्भगवद् गीता 4.39). जो गुरु के वचनों पर श्रद्धा नहीं रखता, वह मूर्ख तथा संशयग्रस्त व्यक्ति नष्ट हो जाता है। श्रीकृष्ण कहते हैं –

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति। (श्रीमद्भगवद्गीता 4.40)

अतः संस्थापालिकों को सुझाव है कि वे विशेषज्ञ की विशिष्ट सलाह लेते समय आदरपूर्वक व्यवहार करें, तथा अपने परामर्शदाता पर श्रद्धा और विश्वास रखें। नियोजन कार्य में सहायक प्रबन्धक भी गुरुवत् व्यवहार करे। वह समस्या का गहन विश्लेषण करे, तथा उसका व्यावहारिक तर्कसंगत तथा सही समाधान बताये। उसे अपनी बात मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत करनी चाहिये, जो श्रोता के मन में बैठ जाये। वह कार्यसम्पादन की नीति समझाने के साथ साथ, उस कार्य के पूरा होने पर मिलने वाले लाभों का वर्णन करे। साथ ही उस कार्य को न करने पर होने वाली हानियों, तथा अपयश आदि पर भी प्रकाश डाले। श्री कृष्ण ने भी अर्जुन को युद्ध करने पर मिलने वाले लाभ का वर्णन करते हुए कहा था – **हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं, जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्** (श्रीमद्भगवद् गीता 2.37) युद्ध न करने पर क्या परिणाम होगा, इसका भी वर्णन करते हुए उन्होंने कहा था – शत्रु लोग तुम्हें युद्ध से भयभीत समझेंगे, और तुम्हारे बारे में अनेक न कहने योग्य बातें करेंगे। ऐसी बदनामी तो मृत्यु से भी अधिक दुःखदायी है–

सम्भावितस्य चाकीर्तिः मरणादतिरिच्यते। (श्रीमद्भगवद्गीता 2.34)

इस प्रकार परामर्शदाता प्रबन्धक कार्य के सभी पक्षों पर प्रकाश डालते हुए, अपना मत अभिव्यक्त करे, परन्तु किसी पर भी अपना निर्णय थोपे नहीं। वह संस्थाप्रमुख को विवेकपूर्वक विचार विमर्श करके, उस कार्य को करने अथवा न करने की स्वतन्त्रता भी दें, जैसे कि श्रीकृष्ण ने गीता का ज्ञान देने के बाद अर्जुन से कहा था –

विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु।। (श्रीमद्भगवद् गीता 18.63)

यही उत्कृष्ट परामर्शविधि, नियोजनविधि तथा नेता की विशेषता है।

परामर्शदाता प्रबन्धक का कर्तव्य है कि वह अपनी विशिष्ट सलाह देने के पूर्व यह भी सुनिश्चित कर ले कि संस्थाप्रमुख सचमुच ही उसकी राय सुनना, जानना चाहता है, अथवा नहीं। व्यावहारिक नीति है कि जब तक कोई श्रद्धापूर्वक राय न पूछे, उसे कोई भी परामर्श नहीं देना चाहिये। गीता का निर्देश है, ज्ञान उसी को दिया जाता है, जो उसका उचित पात्र हो। तपस्या, भक्ति, सुनने की इच्छा से रहित तथा परामर्शदाता में दोष खोजने वालों को ज्ञान नहीं देना चाहिये।

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन।

न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति। — (श्रीमद्भगवद् गीता 18.67)

जब विशिष्टज्ञानी परामर्शदाता के परामर्श के अनुसार निष्ठापूर्वक योजना कार्यान्वित की जाती है, तो कार्य में सफलता मिलना निश्चित ही समझो।

परामर्श के बाद प्रबन्धन का अगला चरण है, नियोजन अर्थात् कार्यसम्पादन की योजना बनाना। अपनी शक्ति, मार्केट में अपने प्रतिस्पर्धियों की शक्ति का आकलन करके कार्य की योजना बनानी चाहिये। प्रबन्धन के इस सूत्र का संकेत हमें गीता के प्रथम अध्याय में मिलता है। महाभारत युद्ध से पूर्व अर्जुन ने कौरवों तथा पाण्डवों की सेना के बीच अपना रथ खड़ा किया, और अपनी तथा कौरवों की सैन्य शक्ति का आकलन किया। योजना बन जाने के बाद कार्यकारिणी समिति के सभी सदस्यों की सहमति लेकर ही कार्य आरम्भ करना चाहिये जिस प्रकार युधिष्ठिर ने युद्ध प्रारम्भ करने के पूर्व भीष्म पितामह, गुरु द्रोणाचार्य आदि पूजनीय गुरुजनों को प्रणाम करके युद्ध प्रारम्भ करने की अनुमति ली थी।

कार्य सम्पादन के पूर्व, तथा कार्यविधि में अनेक विघ्न आते हैं। कभी–कभी मानवीय दुर्बलता इस कदर हावी होने लगती है, कि कर्म विकर्म (अनुचित कर्म) बन जाता है। कभी क्षुद्र स्वार्थ भावना, ममता, मोह में पड़ कर, व्यक्ति स्वार्थ को महत्त्व देने लगता है। अपने भाई, पुत्र, आदि सम्बन्धियों को लाभ पहुँचाने की इच्छा से वह अनुचित निर्णय भी ले लेता है, और अनुचित काम भी करता है। तब उसका कर्म क्षेत्र धर्मक्षेत्र नहीं रहता, क्योंकि वह पराये (पाण्डवाः) तथा अपने (मामकाः) का भेदभाव करता रहता है। अर्जुन भी युद्ध में अपने भाई, भतीजों, गुरु, भीष्म पितामह आदि प्रियजनों को देख कर मोहग्रस्त हो गया था। उसने युद्ध द्वारा भीषण नरसंहार, तथा उसके परिणामस्वरूप होने वाली आर्थिक अवनति तथा सांस्कृतिक अवमूल्यन के विषय में भी सोचा, और युद्ध न करने का निर्णय ले लिया था। फिर उसने विशिष्ट ज्ञान सम्पन्न गुरु तुल्य श्रीकृष्ण की सलाह ली, और गीताज्ञान के पश्चात–युद्ध करना उसे उचित लगा।

प्रत्येक प्रबन्धक को इन मोहमयी परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। उसका कर्म क्षेत्र (कुरुक्षेत्र) धर्मक्षेत्र ही रहे, पापक्षेत्र न बने, इसलिये उसे " निर्ममो निरहंकारः " बनना चाहिये। उसकी दूर दृष्टि व्यक्तिगत स्वार्थ पर नहीं, बल्कि आत्यन्तिक मानवकल्याण पर हो, उसके निर्णय विवेकपूर्ण तथा भेदभाव रहित हों। क्योंकि सच्चाई का ज्ञान तभी होता है, जब व्यक्ति माया, मोह, स्वार्थ और मानवसुलभ दुर्बलताओं से दूर हो जाये, ऊपर उठ जाये। गीता का कथन है –

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति।

तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ।। (श्रीमद्भगवद् गीता 2.52)

ऐसी मनःस्थिति में ही व्यक्ति रागद्वेषरहित होकर निष्पक्ष निर्णय ले सकता है।

संस्था प्रमुख के लिये उचित है कि वह कुशल तथा निष्ठावान् कार्यकर्ताओं का संग्रह करे। एक प्रोजेक्ट (Project) समाप्त हो जाने के बाद भी वह अपने लक्ष्य को सदा ध्यान में रखे। अपने मैनेजरों की कार्यकुशलता को पहचाने, उनकी प्रशंसा करे, तथा प्रोजेक्ट समाप्त हो जाने के पश्चात भी उनको नौकरी दिये रखे, छोड़े नहीं। गीता कहती है–

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।

विनश्यत्स्व विनश्यन्तं य पश्यति सः पश्यति ।। (श्रीमद्भगवद् गीता 13.27)

लक्ष्य का ध्यान सदा उसी प्रकार रहना चाहिये, जिस प्रकार ज्ञानी सभी चराचार भूतों में अविनाशी परमेश्वर को देखता है। किसी भी प्रोजेक्ट को क्रियान्वित करने के लिये धन यद्यपि आवश्यक होता है, परन्तु दुर्लभ नहीं है। कार्य में धन की अपेक्षा ज्ञान अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि निष्ठावान् विशिष्टज्ञान सम्पन्न कुशल व्यक्ति मिलने दुर्लभ होते हैं। गीता कहती है–

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप। (श्रीमद्भगवद् गीता 4.33)

लाभांश वितरण –

निष्ठावान् कार्यकुशल प्रबन्धकों तथा कर्मचारियों के सहयोग से प्राप्त लाभ पर उन सबका भी अधिकार है। उसको सबके सम्मिलित प्रयत्नों से प्राप्त किया जाता है, अतः लाभ को सबमें बाँट कर खाना चाहिये। गीता वर्णित यज्ञशिष्टान्न यही लाभांश है जो सबको देने के बाद बचता है। जो स्वयं अकेला ही लाभांश हड़प ले, आत्मसात् कर ले, वह चोर है –

तै र्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः। (श्रीमद्भगवद् गीता 3.12)

अतः मालिकों का कर्तव्य है, कि वे अपने कर्मचारियों को उचित लाभांश, बोनस आदि देकर, उनकी उन्नति करें, उनका जीवनस्तर ऊँचा उठायें। कर्मचारियों का भी कर्तव्य है कि वे परिश्रम पूर्वक ईमानदारी से कार्य करके अपने स्वामियों की उन्नति में योगदान दें। स्वामी के हिस्से के लाभांश, अथवा उसकी किसी अन्य वस्तु को हड़पने वाला कर्मचारी भी उसी प्रकार चोर है, जिस प्रकार देवताओं को अर्पण किये बिना ही भोजन खाने वाला चोर है।...... प्रत्येक मालिक ऐसा त्याग नहीं कर सकता। एक उच्च श्रेणी का सज्जन तथा सदाचारी, मानवीय मूल्यों का आदर करने वाला व्यक्ति ही ऐसा अद्भुत कार्य कर सकता है।

इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता संस्था के शीर्ष प्रबन्धकों के लिये व्यावहारिक तथा उपयोगी सूत्र देती है।

अद्भुत दर्शन व भय

श्री प्रभु जी के चरणारविन्द में हर समय सैकड़ों आदमियों की भीड़ लगी रहा करती थी। इधर-उधर से आकर लोग सत्संग लाभ करते थे। श्री प्रभु जी के अद्भुत दर्शन पाकर और अपने ऊपर हुई अनेकों प्रकार की कृपाओं को देख करके लोगों के मन में यह भावना होती थी कि ये कोई परिपूर्ण महापुरुष हैं। इसलिए सब यह सोचते रहते थे कि इनकी विशेष प्रकार की चमत्कारिक कृपाओं को देखें। इसलिए सब लोग बार-बार प्रार्थना करते रहते थे कि प्रभो ! कृपा कर कोई विशेष चमत्कार दिखलायें। श्री प्रभु जी ने उनके वचनों को स्वीकार नहीं किया कि भाई हम क्या दिखलायें, मन लगाकर ईश्वर का भजन किया करो। तुम्हारे शरीर में अपने आप ही चमत्कार हो जायेंगे। किन्तु फिर भी लोगों ने अपनी हठ को नहीं छोड़ा और बार-बार इस प्रकार की प्रार्थना करते रहे। एक दिन जब सैकड़ों आदमियों की भीड़ बैठी थी, लोगों ने हठ पूर्वक प्रार्थना की कि प्रभो ! आज तो कोई विशेष चमत्कारिक लीला दिखलाओ, तभी हम अपने घरों को जायेंगे। लोगों के बार-बार आग्रह करने पर श्री प्रभु जी ने कहा कि अच्छा भाई तुम सब आँखें बन्द कर लो। एक बार आँखें बन्द करने के बाद उन्हें आज्ञा दी कि अब आँखें खोल लो। श्री प्रभु जी की आज्ञा सुनकर जिस समय लोगों ने आँखें खोलीं तो बड़ा आश्चर्य हुआ। उनको कुछ दिखलाई ही नहीं देता था, न किसी की आवाज सुनाई देती थी, न किसी वस्तु का स्पर्श होता था। न कोई शीतोष्ण का ज्ञान था। केवल महा अंधकार ही अंधकार अनुभव में आता था। कोई समय का ज्ञान नहीं था और न यह ज्ञान था कि हम कहाँ हैं ? थोड़ी देर बाद सब लोग इस दशा में रहे। उसके बाद उनको अनुभव हुआ कि उनके नीचे से जमीन निकाल ली गई है, जैसे किसी बैठे हुए आदमी के नीचे से आसन खींच लिया हो। ऐसी अनुभूति के बाद उन लोगों ने अनुभव किया कि वे प्रतिक्षण नीचे गिरते जा रहे हैं। उन्हें एक धुंधले से प्रकाश में यही अनुभव हो रहा था कि पता नहीं वे कितने गहरे गड्ढे में नीचे को चले जा रहे हैं। वाह्विषयान अनुभूति से बिल्कुल शून्य थे। उनका मन यह अनुभव कर रहा था कि पता नहीं कितने वर्ष हमें नीचे को जाते हुए हो गये हैं। किन्तु कोई आधार नहीं मिल रहा है, जहाँ जाकर के ठहरेंगे। उनके मन में यह स्मृति थी कि हमने यह बहुत बड़ा अपराध किया जो कि बाबा के सामने इतनी बड़ी हठ की। अब दुबारा हमें हमारे घरबार, जमीन जायदाद व स्त्री बच्चों को कौन दिखायेगा ? ऐसी उद्विग्न स्थिति के अन्दर पुनः श्री प्रभु जी के चरण कमलों का स्मरण किया और ऊपर की ओर देखने का प्रयत्न किया तो क्या देखते है कि ऊपर से बड़े-बड़े भयंकर सर्प दौड़े हुए उन्हीं की ओर बड़े वेग से आ रहे हैं। मानों ये

सब इन्हीं सबको खा जाना चाहते हैं। अब वे सब लोग और भी भयभीत हुये और श्री प्रभु जी का स्मरण करने लगे। प्रार्थना की कि हे प्रभु ! हमसे बड़ी भूल हुई, अब ऐसी भूल हम दुबारा नहीं करेंगे। आप कृपा करके हमारी रक्षा कीजिये। भयकातर मन से यह प्रार्थना करने के बाद उनको एक वाणी सुनाई दी। वह वाणी श्री प्रभु जी की थी। श्री प्रभु जी ने कहा अच्छा डरो मत, आँखें बन्द करो। उन लोगों ने उसी स्थिति में आँखें बन्द कर लीं। पुनः आज्ञा हुई आँखें खोल दो और उन लोगों ने आँखें खोल दीं। आँखें खोलने पर उन लोगों ने देखा कि उनका शरीर पसीने से तरबतर था। भय के मारे काँप रहे थे।गले से आवाज नहीं निकलती थी वे शरीर प्राणहीन जैसे हुए थे । बड़ी कठिनता के साथ मन को चेतना में लाकर के लोग धीरे से उठे और श्री प्रभु जी को प्रणाम करके चुपचाप बाग से बाहर चले गये। फिर दुबारा उन्होंने कोई चमत्कार देखने की इच्छा प्रकट नहीं की। और गाँव में जाकर परस्पर चर्चा करने लगे कि ये साधारण महात्मा नहीं कोई योगेश्वर हैं, इनकी लीलायें वर्णनातीत हैं।

लोक गीत

– भूपेन्द 'अंकुश', जलेसर

श्यामजू ने नाथ लियो री ! काली ।
जमुना कर दई विष से खाली ।। टेक ।।

नाय मारी वाके डण्डा लाठी ना दी उसको गाली ।
रमणक द्वीप भेज दियौ काली सबकी विपदा टाली ।। 1 ।।

पीने योग्य बनायौ पानी, भर लोटा या थाली ।
गली गली चल खबर सुना दें बजा बजा कर ताली ।। 2 ।।

मोर मुकुट माथै पै, जाकी काली लट घुँघुराली ।
वंशी बजावत नाचत आयौ उछल उछल कर, आली ।। 3 ।।

जसुदा मैया कथा करावै, बाबा देखा–भाली ।
हलधर बाँटि सबको हलवा व 'अंकुश' की रखवाली ।। 4 ।।

संन्यास का अर्थ है, मृत्यु के प्रति प्रेम। सांसारिक लोग जीवन से प्रेम करते हैं, परन्तु संन्यासी के लिए प्रेम करने को मृत्यु है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि हम आत्महत्या कर लें। आत्महत्या करने वालों को तो कभी मृत्यु प्यारी नहीं होती है। संन्यासी का धर्म है समस्त संसार के हित के लिए निरंतर आत्मत्याग करते हुए धीरे–धीरे मृत्यु को प्राप्त हो जाना।

– स्वामी विवेकानन्द

अपने लिए नहीं, भगवान के लिए !

यहाँ सृजन करने के लिए यदि कुछ है तो वह विज्ञान का ही सृजन है। अर्थात् इस पृथिवी पर, केवल मन-बुद्धि और प्राण में ही नहीं, प्रत्युत शरीर में और इस जड़ प्रकृति में भी भगवत्सत्ता का अवतरण कराना है। हमारा उद्देश्य अहंभाव के फैलाव को रोकने वाले प्रतिबन्धों को हटाना अथवा मानव मन की कल्पनाओं या अहंकारगत प्राणवासनाओं की स्वार्थपूर्ति के लिए खुला मैदान छोड़ देना और बेरोक आश्रय प्रदान करना नहीं है। यहाँ कोई भी इसलिए नहीं है कि 'जो मन भावे करे' या किसी ऐसे संसार को रचे जिसमें हम लोग अपनी मनमानी कर सकें; यहाँ हमें तो वही करना है जो भगवान् चाहते हैं और ऐसा ही संसार रचना है जिसमें भगवदिच्छा अन्तर्निहित सत्य को प्रकट करे-वह भगवदिच्छा किसी मानव-अज्ञान से विकृत न हो। विज्ञान के इस योग में साधक को जो काम करना होता है वह कोई उसका अपना काम नहीं है जिस पर वह अपनी शर्तें भी लाद सकें, प्रत्युत वह कर्म भगवान् का है और उसे वह कर्म भगवन्निर्दिष्ट नियमों के अनुसार ही करना होगा। हमारा योग हमारे लिए नहीं है, बल्कि भगवान के लिए है। हम जो कुछ व्यक्त करना चाहते हैं वह हमारा वैयक्तिक व्यक्तीकरण नहीं है– सर्वतन्त्रस्वतन्त्र, सर्वबन्धविनिर्मुक्त वैयक्तिक अहंकार का भी व्यक्तिकरण नहीं है; यह स्वयं भगवान का व्यक्त होना है। हमारी मुक्ति, हमारी पूर्णकामता और हमारी परिपूर्णता तो भगवान के व्यक्त होने का ही एक परिणाम और अंगमात्र है और सो भी किसी अहंभाव से नहीं, न किसी अहंता-ममता से निकले स्वार्थ के लिए। यह मुक्ति, पूर्णकामता, परिपूर्णता भी हमारे अपने लिये नहीं, भगवान के लिए है।

– महर्षि अरविन्द

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सर्वाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ____________________

____

____

☐☐☐☐☐☐

आसीनो दूरं व्रजति शयनो याति सर्वतः।
कस्तं मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति ॥

(कठोपनिषद् 1/21)

परब्रह्म परमात्मा अचिन्त्यशक्ति हैं और विरुद्ध धर्मों के आश्रय हैं। एक ही समय में उनमें विरुद्ध धर्मों की लीला होती है। इसी से वे एक साथ सूक्ष्म से सूक्ष्म और महान बताये गये हैं। वे परमेश्वर अपने नित्य परमधाम में विराजमान रहते हुए ही भक्ताधीनतावश उनकी पुकार सुनते ही दूर से दूर चले जाते हैं। परमधाम में निवास करने वाले पार्षद भक्तों की दृष्टि में वहाँ शयन करते हुए ही वे सब ओर चलते रहते हैं। अथवा वे परमात्मा सदा-सर्वदा सर्वत्र स्थित हैं। वे सर्वत्र सब रूपों में नित्य अपनी महिमा में स्थित हैं।

संस्थापक :– योगयोगेश्वर अनन्तश्री रामलाल जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. रामलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ऑफसेट एण्ड प्रिंटिंग प्रेस, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सर्वाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566 सम्पादक : आचार्य ब. (डॉ.) रामलाल शर्मा